# जैन तत्त्व संग्रह

## द्वितीय भाग

अभय जैन ग्रन्थालय
बीकानेर

प्रकाशक
श्री जैन श्वेताम्बर तेरापथी महासभा
कलकत्ता।

प्राप्तिस्थान
श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा
३, पोर्तुगीज चर्च स्ट्रीट,
कलकत्ता १

प्रथम संस्करण २०००
सन् २०१७
मूल्य साठ नये पैसे

मुद्रक
सुराना प्रिन्टिंग वर्क्स
४०२, अपर चितपुर रोड
कलकत्ता ७

# आत्म-निवेदन

आध्यात्मिक शिक्षा मानव जीवन के चारित्रिक विकास के लिए अनिवार्य है। यही एकमात्र सही साधन है जिसके सहारे आदर्श विचारों का सृजन हो सकता है अत इसे दृष्टिगत रखते हुए धार्मिक शिक्षा का जन-जीवन में प्रसार व प्रचार करने एवं छात्र-छात्राओं में अध्ययन की अभिरुचि जाग्रत करने के उद्देश्य को लेकर श्री जैन श्वे० तेरापंथी महासभा के अन्तर्गत शिक्षण विभाग द्वारा जैन सिद्धान्त प्रवेशिका प्रथम, द्वितीय वर्ष, जैन सिद्धान्त विशारद प्रथम, द्वितीय वर्ष; जैन सिद्धान्त रत्न प्रथम, द्वितीय वर्ष की परीक्षाएँ संचालित है। अखिल भारतीय स्तर पर संचालित इन परीक्षाओं के माध्यम से हजारों छात्र छात्राएँ प्रतिवर्ष लाभान्वित होते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक जैन सिद्धान्त प्रवेशिका द्वितीय वर्ष परीक्षा के लिए निर्धारित है। इसमें कुल ३२ पाठ है जो सहज व सरल होने के कारण विद्यार्थियों के लिए शीघ्र हृदयंगम बनने में अत्यन्त सहायक होंगे।

विद्वानों द्वारा रचित ये छात्रोपयोगी रचनाएँ छात्र-छात्राओं के धार्मिक ज्ञान व प्रतिभा को तो बढ़ायेंगी ही—साथ ही उनके चारित्रिक विकास के लिए सफल सोपान बनेंगी।

आशा है विद्यार्थी बन्धु व बहिनें इस परीक्षोपयोगी पुस्तक से लाभान्वित होंगे।

—केवलचन्द नाहटा
संयोजक
महासभा शिक्षण विभाग

श्रावण सुदी १५,
संवत् २०१७।

# विषयानुक्रम

## प्रथम खण्ड


| पाठ | विषय | पृष्ठ |
|---|---|---|
| १ | पच्चीस बोल | १ |
| २ | चउवीसत्थव | १९ |
| ३ | धर्म-अधर्म द्वार | २६ |
| ४ | पुण्य-पाप द्वार | २८ |
| ५ | दान दया-अनुकम्पा द्वार | २९ |
| ६ | गुण स्थान द्वार | ३१ |
| ७ | सम्यक्-दर्शन द्वार | ३३ |
| ८ | श्रावक चिन्तन द्वार | ३४ |
| ९ | विश्राम द्वार | ३५ |
| १० | श्रावक गुण द्वार | ३६ |
| ११ | व्रतावत द्वार | ३८ |
| १२ | उपासक ( श्रावक ) प्रतिमा द्वार | ४१ |
| १३ | प्रमाण द्वार | ४३ |
| १४ | आगम द्वार | ४६ |
| १५ | प्रश्नोत्तर द्वार | ४८ |
| १६ | अणुव्रत प्रार्थना | ५७ |

## द्वितीय खण्ड


| पाठ | विषय | लेखक | पृष्ठ |
|---|---|---|---|
| १ | स्वावलम्बी महावीर | मुनिश्री नथमलजी | ५६ |
| २ | अक्षय तृतीया | मुनिश्री नथमलजी | ६१ |
| ३ | माया और ग्रन्थी | श्री मोहनलाल बांठिया | ६३ |
| ४ | दीपमालिका | मुनिश्री नथमलजी | ६६ |
| ५ | तेरापथ की मर्यादाएँ | मुनिश्री नथमलजी | ६८ |
| ६ | साधु की गोचरी के नियम | मुनिश्री श्रीचन्दजी | ७१ |
| ७ | आशातना | मुनिश्री नथमलजी | ७८ |
| ८ | साधु की साधारण दिनचर्या | श्री चन्दनमल पुगलिया | ८० |
| ९ | क्षमा याचना | मुनिश्री नथमलजी | ८४ |
| १० | गाथापति कामदेव | श्री श्रीचन्द रामपुरिया | ८८ |
| ११ | धर्म स्थान | मुनिश्री नथमलजी | ९४ |
| १२ | सामायिक एक विवेचन | श्री जयचन्दलाल कोठारी | ९७ |
| १३ | छात्र शिक्षा | आचार्यश्री तुलसी | १०८ |
| १४ | अनुभूति के कण | मुनिश्री नथमलजी | ११० |
| १५ | दान | श्री बच्छराज सचेती | १११ |
| १६ | अल्पारंभी बहुरंभी | श्री कन्हैयालाल गांधी | ११५ |

# जैन तत्त्व संग्रह

## द्वितीय भाग

# प्रथम खण्ड (कण्ठस्थ)

## पाठ १

## पच्चीस बोल

(१) पहले बोले गति चार—

(१) नरक गति (२) तिर्यञ्च गति (३) मनुष्य गति (४) देव गति।

(२) दूजे बोले जाति पाँच—

(१) एकेन्द्रिय (२) द्वीन्द्रिय (३) त्रीन्द्रिय (४) चतुरिन्द्रिय (५) पञ्चेन्द्रिय।

(३) तीजे बोले काया छह—

(१) पृथ्वीकाय (२) अप्काय (३) तेजस्काय (४) वायुकाय (५) वनस्पतिकाय (६) त्रसकाय।

(४) चौथे बोले इन्द्रिय पाँच—

(१) श्रोत्रेन्द्रिय (२) चक्षुरिन्द्रिय (३) घ्राणेन्द्रिय (४) रसनेन्द्रिय (५) स्पर्शनेन्द्रिय।

(५) पाँचवें बोले पर्याप्ति छह—

(१) आहार पर्याप्ति (२) शरीर पर्याप्ति (३) इन्द्रिय पर्याप्ति (४) श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति (५) भाषा पर्याप्ति (६) मन पर्याप्ति।

(६) छट्ठे बोले प्राण दस—

(१) श्रोत्रेन्द्रिय प्राण (२) चक्षुरिन्द्रिय प्राण (३) घ्राणेन्द्रिय प्राण (४) रसनेन्द्रिय प्राण (५) स्पर्शनेन्द्रिय प्राण (६) मनोबल (७) वचन बल (८) काय बल (९) श्वासोच्छ्वास प्राण (१०) आयुष्य प्राण।

(७) सातवें बोले शरीर पाँच—

(१) औदारिक शरीर (२) वैक्रिय शरीर (३) आहारक शरीर (४) तैजस शरीर (५) कार्मण शरीर।

(८) आठवें बोले योग पन्द्रह—

चार मनका-(१) सत्य मनोयोग (२) असत्य मनोयोग (३) मिश्र मनोयोग (४) व्यवहार मनोयोग।

चार वचनका-(५) सत्य वचनयोग (६) असत्य वचनयोग (७) मिश्र वचन योग (८) व्यवहार वचनयोग।

सात कायका-(९) औदारिक काययोग। (१०) औदारिक मिश्र काययोग। (११) वैक्रिय काययोग। (१२) वैक्रिय मिश्र काययोग। (१३) आहारक काययोग। (१४) आहारक मिश्र काययोग। (१५) कार्मण काययोग।

(९) नौ बोले उपयोग बारह—

पाच ज्ञान—(१) मति ज्ञान (२) श्रुत ज्ञान (३) अवधि ज्ञान (४) मन पर्यव ज्ञान (५) केवल ज्ञान।

तीन अज्ञान—(६) मति अज्ञान (७) श्रुत अज्ञान (८ विभग अज्ञान।

चार दर्शन—(६) चक्षु दर्शन (१०) अचक्षु दर्शन (११) अवधि दर्शन (१२) केवल दर्शन।

## (१०) दसवें बोले कर्म आठ—

(१) ज्ञानावरणीय कर्म (२) दर्शनावरणीय कर्म (३) वेदनीय कर्म (४) मोहनीय कर्म (५) आयुष्य कर्म (६) नाम कर्म (७) गोत्र कर्म (८) अन्तराय कर्म।

## (११) ग्यारहवें बोले गुणस्थान चौदह—

(१) मिथ्यादृष्टि गुणस्थान (२) सास्वादन सम्यग्दृष्टि गुणस्थान (३) मिश्र गुणस्थान (४) अविरति सम्यग्दृष्टि गुणस्थान (५) देशविरति गुणस्थान (६) प्रमत्त संयत गुणस्थान (७) अप्रमत्त संयत गुणस्थान (८) निवृत्ति बादर गुणस्थान (६) अनिवृत्ति बादर गुणस्थान (१०) सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थान (११) उपशांतमोह गुणस्थान (१२) क्षीणमोह गुणस्थान (१३) सयोगी केवली गुणस्थान (१४) अयोगी केवली गुणस्थान।

## (१२) बारहवें बोले पाँच इन्द्रियों के तेईस विषय—

श्रोत्रेन्द्रियके तीन विषय—(१) जीव शब्द (२) अजीव शब्द (३) मिश्र शब्द।

चक्षुरिन्द्रियके पाँच विषय—(४) कृष्ण वर्ण (५) नील वर्ण (६) रक्त वर्ण (७) पीत वर्ण (८) श्वेत वर्ण।

घ्राणेन्द्रियके दो विषय—(९) सुगन्ध (१०) दुर्गन्ध।

रसनेन्द्रियके पाच विषय—(११) तिक्त रस (१२) कटु रस (१३) कषाय रस (१४) आम्ल रस (१५) मधुर रस।

स्पर्शनेन्द्रियके आठ विषय—(१६) शीत स्पर्श (१७) उष्ण-स्पर्श (१८) रूक्ष स्पर्श (१९) स्निग्ध स्पर्श (२०) लघु स्पर्श (२१) गुरु स्पर्श (२२) मृदु स्पर्श (२३) कर्कश स्पर्श।

## (१३) तेरहवें बोले दस प्रकार के मिथ्यात्व—

(१) धर्मको अधर्म समझने वाला मिथ्यात्वी
(२) अधर्मको धर्म समझने वाला मिथ्यात्वी
(३) साधुको असाधु समझने वाला मिथ्यात्वी
(४) असाधुको साधु समझने वाला मिथ्यात्वी
(५) मार्ग को कुमार्ग समझने वाला मिथ्यात्वी
(६) कुमार्गको मार्ग समझने वाला मिथ्यात्वी
(७) जीवको अजीव समझने वाला मिथ्यात्वी
(८) अजीवको जीव समझने वाला मिथ्यात्वी
(९) मुक्तको अमुक्त समझने वाला मिथ्यात्वी
(१०) अमुक्तको मुक्त समझने वाला मिथ्यात्वी

## (१४) चौदहवें बोले नव तत्त्व के ११५ भेद—

१—जीव तत्त्व के चौदह भेद—

सूक्ष्म एकेन्द्रिय के दो भेद—(१) अपर्याप्त और (२) पर्याप्त।

बादर एकेन्द्रिय के दो भेद—(३) अपर्याप्त और (४) पर्याप्त।

द्वीन्द्रिय के दो भेद—(५) अपर्याप्त और (६) पर्याप्त।

त्रीन्द्रिय के दो भेद—(७) अपर्याप्त और (८) पर्याप्त।

चतुरिन्द्रिय के दो भेद—(९) अपर्याप्त और (१०) पर्याप्त।

असन्नी पचेन्द्रिय के दो भेद—(११) अपर्याप्त और (१२) पर्याप्त।

सन्नी पचेन्द्रिय के दो भेद—(१३) अपर्याप्त और (१४) पर्याप्त।

२—अजीव तत्त्व के चौदह भेद —

धर्मास्तिकाय के तीन भेद—(१) स्कन्ध—(२) देश (३) प्रदेश।

अधर्मास्तिकायके तीन भेद—(४) स्कन्ध (५) देश (६) प्रदेश।

आकाशास्तिकायके तीन भेद—(७) स्कन्ध (८) देश (९) प्रदेश।

काळास्तिकाय एक भेद—(१०) काल।

पुद्गलास्तिकायके चार भेद—(११) स्कन्ध (१२) देश (१३) प्रदेश (१४) परमाणु।

३—पुण्य तत्त्व—पुण्य बन्ध के कारण नौ—

(१) अन्न पुण्य (२) पानी पुण्य (३) स्थान पुण्य (४) शय्या पुण्य (५) वस्त्र पुण्य (६) मन पुण्य (७) वचन पुण्य (८) काय पुण्य (९) नमस्कार पुण्य।

४—पाप तत्त्व—पाप बधके कारण अठारह—

(१) प्राणातिपात पाप (२) मृषावाद पाप (३) अदत्तादान पाप (४) मैथुन पाप (५) परिग्रह पाप (६) क्रोध पाप (७) मान पाप (८) माया पाप (९) लोभ पाप (१०) राग पाप (११) द्वेष पाप (१२) कलह पाप (१३) अभ्याख्यान पाप (१४) पैशुन्य पाप (१५) पर परिवाद पाप (१६) रति अरति पाप (१७) माया मृषा पाप (१८) मिथ्या दर्शन पाप।

५—आश्रव तत्त्वके भेद बीस—

(१) मिथ्यात्व आश्रव (२) अव्रत आश्रव (३) प्रमाद आश्रव (४) कषाय आश्रव (५) योग आश्रव (६) प्राणातिपात आश्रव (७) मृषावाद आश्रव (८) अदत्तादान आश्रव (९) मैथुन आश्रव (१०) परिग्रह आश्रव (११) श्रोत्रेन्द्रिय प्रवृत्ति आश्रव (१२) चक्षुरिन्द्रिय प्रवृत्ति आश्रव (१३) घ्राणेन्द्रिय प्रवृत्ति आश्रव (१४) रसनेन्द्रिय प्रवृत्ति आश्रव (१५) स्पर्शनेन्द्रिय प्रवृत्ति

आश्रव (१६) मन प्रवृत्ति आश्रव (१७) वचन प्रवृत्ति आश्रव (१८) काय प्रवृत्ति आश्रव (१६) भण्डोपकरण आश्रव (२०) शुचि कुशाग्र मात्र दोष सेवन आश्रव।

६—संवर तत्त्वके भेद बीस—

(१) सम्यक्त्व संवर (२) व्रत संवर (३) अप्रमाद संवर (४) अकषाय संवर (५) अयोग संवर (६) प्राणातिपातविरमण संवर (७) मृषावादविरमण संवर (८) अदत्तादानविरमण संवर (६) अब्रह्मचर्य विरमण संवर (१०) परिग्रह विरमण संवर (११) श्रोत्रेन्द्रिय निग्रह संवर (१२) चक्षुरिन्द्रिय निग्रह संवर (१३) घ्राणेन्द्रिय निग्रह संवर (१४) रसनेन्द्रिय निग्रह संवर (१५) स्पर्शनेन्द्रिय निग्रह संवर (१६) मनो निग्रह संवर (१७) वचन निग्रह संवर (१८) काय निग्रह संवर (१६) भण्डोपकरण संबंधी अयत्ना न करना संवर (२०) शुचि कुशाग्र मात्र दोष सेवन न करना संवर।

७—निर्जरा तत्त्वके भेद बारह—

(१) अनशन (२) ऊनोदरी (३) भिक्षाचरी (४) रस परित्याग (५) काया-क्लेश (६) प्रतिसंलीनता (६) प्रायश्चित् (८) विनय (६) वैयावृत्य (१०) स्वाध्याय (११) ध्यान (१२) कायोत्सर्ग।

८—बन्ध तत्त्वके भेद चार—

(१) प्रकृति बन्ध (२) स्थिति बन्ध (३) अनुभाग बन्ध (४) प्रदेश बन्ध।

९—मोक्ष तत्त्वके भेद चार—

(१) ज्ञान (२) दर्शन (३) चारित्र (४) तप।

## (१५) पन्द्रहवें बोले आत्मा आठ—

| | |
|---|---|
| (१) द्रव्य आत्मा | (२) कषाय आत्मा |
| (३) योग आत्मा | (४) उपयोग आत्मा |
| (५) ज्ञान आत्मा | (६) दर्शन आत्मा |
| (७) चारित्र आत्मा | (८) वीर्य आत्मा |

## (१६) सोलहवें बोले दण्डक चौवीस—

सात नारकीका दण्डक एक— पहला

भवनपति देवोंके दण्डक दश—

| | |
|---|---|
| असुरकुमारका दण्डक | दूसरा |
| नागकुमारका दण्डक | तीसरा |
| विद्युतकुमारका दण्डक | चौथा |
| सुपर्णकुमारका दण्डक | पांचवां |
| अग्निकुमारका दण्डक | छट्ठा |
| वातकुमारका दण्डक | सातवां |
| स्तनितकुमारका दण्डक | आठवां |
| उदधिकुमारका दण्डक | नवमां |
| द्वीपकुमारका दण्डक | दशवां |
| दिग्कुमारका दण्डक | ग्यारहवां |

पाँच स्थावर जीवोंका दण्डक पाँच—

| | | |
|---|---|---|
| पृथ्वीकायका | दण्डक | बारहवां |
| अप्कायका | दण्डक | तेरहवां |
| तेजस्कायका | दण्डक | चौदहवां |
| वायुकायका | दण्डक | पन्द्रहवा |
| वनस्पतिकायका | दण्डक | सोलहवा |
| द्वीन्द्रियका | दण्डक | सतरहवां |
| त्रीन्द्रियका | दण्डक | अठारहवा |
| चतुरिन्द्रियका | दण्डक | उन्नीसवा |
| तिर्यञ्च पचेन्द्रियका | दण्डक | बीसवां |
| मनुष्य पचेन्द्रियका | दण्डक | इक्कीसवां |
| व्यन्तर देवोंका | दण्डक | बाईसवां |
| ज्योतिष्क देवोंका | दण्डक | तेईसवां |
| वैमानिक देवोंका | दण्डक | चौबीसवां |

(१७) सतरहवें बोले लेश्या छ'—

(१) कृष्ण लेश्या (२) नील लेश्या (३) कापोत लेश्या (४) तेज लेश्या (५) पद्म लेश्या (६) शुक्ल लेश्या।

(१८) अठारहवें बोले दृष्टि तीन—

(१) सम्यक् दृष्टि (२) मिथ्या दृष्टि (३) सम्यक् मिथ्या दृष्टि।

(१९) उन्नीसवें बोले ध्यान चार—

(१) आर्त्तध्यान (२) रौद्रध्यान (३) धर्मध्यान (४) शुक्लध्यान।

(२०) बीसवें बोले षट् द्रव्यों का ज्ञान—

(१) धर्मास्तिकाय—

द्रव्यसे—एक द्रव्य।

क्षेत्रसे—लोक प्रमाण।

कालसे—आदि अन्त रहित अर्थात अनादि और अनन्त।

भावसे—अरूपी।

गुणसे—गतिशील पदार्थोंकी गतिमें अपेक्षित सहायता करना।

(२) अधर्मास्तिकाय—

द्रव्यसे एक द्रव्य।

क्षेत्रसे—लोक प्रमाण।

कालसे—अनादि और अनन्त।

भावसे—अरूपी।

गुणसे—पदार्थोंके स्थिर रहनेमें अपेक्षित सहायता करना।

(३) आकाशास्तिकाय—

द्रव्यसे—एक द्रव्य।

क्षेत्रसे—लोक अलोक प्रमाण।

कालसे—अनादि और अनन्त।
भावसे—अरूपी।
गुणसे—समस्त पदार्थोंको अवकाश देना, स्थान देना।
भाजन गुण।

(४) काल—
द्रव्यसे अनन्त द्रव्य।
क्षेत्रसे—अढाई द्वीप प्रमाण।
कालसे—अनादि और अनन्त।
भावसे—अरूपी।
गुणसे—वर्तमान गुण।

(५) पुद्गलास्तिकाय—
द्रव्यसे—अनन्त द्रव्य।
क्षेत्रसे—लोक प्रमाण।
कालसे—अनादि और अनन्त।
भावसे—रूपी।
गुणसे—गलन मिलन स्वभाव।

(६) जीवास्तिकाय—
द्रव्यसे - अनन्त द्रव्य।
क्षेत्रसे—लोक प्रमाण।
कालसे—अनादि और अनन्त।
भावसे—अरूपी।
गुणसे—चैतन्य गुण।

(१९) उन्नीसमें बोले ध्यान चार—

(१) आर्त्तध्यान (२) रौद्रध्यान (३) धर्मध्यान (४) शुक्लध्यान।

(२०) बीसमें बोले षट् द्रव्यों का ज्ञान—

(१) धर्मास्तिकाय—

द्रव्यसे—एक द्रव्य।

क्षेत्रसे—लोक प्रमाण।

कालसे—आदि अन्त रहित अर्थात अनादि और अनन्त।

भावसे—अरूपी।

गुणसे—गतिशील पदार्थोंकी गतिमें अपेक्षित सहायता करना।

(२) अधर्मास्तिकाय—

द्रव्यसे एक द्रव्य।

क्षेत्रसे—लोक प्रमाण।

कालसे—अनादि और अनन्त।

भावसे—अरूपी।

गुणसे—पदार्थोंके स्थिर रहनेमें अपेक्षित सहायता करना।

(३) आकाशास्तिकाय—

द्रव्यसे—एक द्रव्य।

क्षेत्रसे—लोक अलोक प्रमाण।

कालसे—अनादि और अनन्त।
भावसे—अरूपी।
गुणसे—समस्त पदार्थोंको अवकाश देना, स्थान देना।
भाजन गुण।

(४) काल—
द्रव्यसे अनन्त द्रव्य।
क्षेत्रसे—अढाई द्वीप प्रमाण।
कालसे—अनादि और अनन्त।
भावसे—अरूपी।
गुणसे—वर्तमान गुण।

(५) पुद्गलास्तिकाय—
द्रव्यसे—अनन्त द्रव्य।
क्षेत्रसे—लोक प्रमाण।
कालसे—अनादि और अनन्त।
भावसे—रूपी।
गुणसे—गलन मिलन स्वभाव।

(६) जीवास्तिकाय—
द्रव्यसे—अनन्त द्रव्य।
क्षेत्रसे—लोक प्रमाण।
कालसे—अनादि और अनन्त।
भावसे—अरूपी।
गुणसे—चैतन्य गुण।

(२१) इक्कीसवें बोले राशि दो—

(१) जीव राशि (२) अजीव राशि

(२२) बाईसवें बोले श्रावक के बारह व्रत—

(१) पहिले व्रतमें श्रावक स्थावर जीव हनन करनेका प्रमाण करे एवं चलने फिरने वाले त्रस जीव हनन करनेका स-उपयोग त्याग करे।

(२) दूसरे व्रतमें श्रावक मोटा झूठ बोलनेका स उपयोग त्याग करे।

(३) तीसरे व्रतमें श्रावक ऐसी मोटी चोरी करनेका त्याग करे, जिससे राजा दण्ड दे व लोग निन्दा करे।

(४) चौथे व्रतमें श्रावक मर्यादा उपरान्त मैथुन सेवनका त्याग करे।

(५) पांचवें व्रतमें श्रावक मर्यादा उपरान्त परिग्रह रखने का त्याग करे।

(६) छट्ठे व्रतमें श्रावक दशों दिशाओंमें मर्यादा उपरान्त जानेका त्याग करे।

(७) सातवें व्रतमें श्रावक छत्तीस प्रकारकी उपभोग परिभोग सामग्रीका मर्यादा उपरान्त त्याग करे एवं पन्द्रह प्रकारके कर्मादानका भी मर्यादा उपरान्त त्याग करे।

(८) आठवें व्रतमें श्रावक मर्यादा उपरान्त अनर्थदण्डका त्याग करे।

(९) नवमें व्रतमें श्रावक सामायिक की मर्यादा करे।

(१०) दशवें व्रतमें श्रावक देशावकाशिक संवर की मर्यादा करे।

(११) ग्यारहव व्रतमें श्रावक पौषध की मर्यादा करे।

(१२) बारहव व्रतमें श्रावक शुद्ध साधुको निर्दोष आहार-पानी आदि चौदह प्रकारका दान दे।

## (२३) तेईसवें बोले साधु के पंच महाव्रत—

(१) पहिले महाव्रतमें साधु सर्वथा प्रकारे जीव हिंसा करे नहीं, करावे नहीं, एव करनेवालेको भला जाने नहीं—मनसे, वचनसे, कायासे।

(२) दूसरे महाव्रतमें साधु सर्वथा प्रकारे झूठ बोले नहीं बोलावे नहीं एव बोलने वालेको भला जाने नहीं—मनसे, वचनसे, कायासे।

(३) तीसरे महाव्रत में साधु सर्वथा प्रकारे चोरी करे नहीं, करावे नहीं एव करने वाले को भला जाने नहीं—मन से, वचन से, काया से।

(४) चौथे महाव्रतमें साधु सवथा प्रकारे मैथुन सेवे नहीं, सेवावे नहीं एव सेवने वाले को भला जाने नहीं—मन से, वचन से, काया से।

(५) पांचव महाव्रत मे साधु सर्वथा प्रकारे परिग्रह रखे नहीं, रखावे नहीं एव रखने वालेको भला जाने नहीं—मन से, वचन से, काया से।

(२४) चौबीसवें बोले भागा ४६—

तीन करण तीन योग से—

तीन करण—करू नहीं, कराऊ नहीं, अनुमोदूं नहीं।

तीन योग—मन, वचन, काय।

अंक ११ का भांगा ६—

यहां पहले १ का अर्थ है एक करण और दूसरे १ का अर्थ है एक योग। अर्थात् एक करण और योग से ६ भांगे हो सकते हैं जैसे—

(क) (१) करूँ नहीं मन से।

(२) करूँ नहीं वचन से।

(३) करूँ नहीं काया से।

(ख) (४) कराऊँ नहीं मन से।

(५) कराऊँ नहीं वचन से।

(६) कराऊँ नहीं काया से।

(ग) (७) अनुमोदूँ नहीं मन से।

(८) अनुमोदूँ नहीं वचन से।

(९) अनुमोदूँ नहीं काया से।

अंक १२ का भांगा ६—

यहा पहले अक १ का अर्थ है एक करण एव दूसरे अक

२ का अर्थ है दो योग। अर्थात् एक करण पर दो योग से ६ भांगे हो सकते हैं जैसे —

(क) (१) करूँ नहीं मन से वचन से।
(२) करूँ नहीं मन से काया से।
(३) करूँ नहीं वचन से काया से।

(ख) (४) कराऊँ नहीं मन से वचन से।
(५) कराऊँ नहीं मन से काया से।
(६) कराऊँ नहीं वचन से काया से।

(ग) (७) अनुमोदूँ नहीं मन से वचन से।
(८) अनुमोदूँ नहीं मन से काया से।
(९) अनुमोदूँ नहीं वचन से काया से।

अंक १३ का भांगा ३—

यहाँ पहले अंक का अर्थ है एक करण और दूसरे अंक ३ का अर्थ है तीन योग। अर्थात् एक करण तीन योग से सिर्फ ३ भांगे हो सकते हैं जैसे—

(क) करूँ नहीं मन से, वचन से, काया से।
(ख) कराऊँ नहीं मन से, वचन से, काया से।
(ग) अनुमोदूँ नहीं मन से, वचन से, काया से।

अंक २१ का भांगा ६—

यहाँ पहले २ का अर्थ है दो करण एवं दूसरे अंक १ का अर्थ है एक योग। अर्थात् दो करण पर योग से ६

भांगे हो सकते हैं जैसे —

(क) (१) करूँ नहीं, कराऊँ नहीं मन से।
(२) करूँ नहीं, कराऊँ नहीं वचन से।
(३) करूँ नहीं, कराऊँ नहीं काया से।

(ख) (४) करूँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं मन से।
(५) करूँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं वचन से।
(६) करूँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं काया से।

(ग) (७) कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं मन से।
(८) कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं वचन से।
(९) कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं काया से।

अंक २७ का भांगा ६ —

यहाँ पहले अंक २ का अर्थ है दो करण और दूसरे अंक २ का अर्थ है दो योग। अर्थात् दो करण एवं दो योग से ६ भांगे हो सकते हैं जैसे—

(क) (१) करूँ नहीं, कराऊँ नहीं मन से, वचन से।
(२) करूँ नहीं, कराऊँ नहीं मन से, काया से।
(३) करूँ नहीं, कराऊँ नहीं वचन से, काया से।

(ख) (४) करूँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं मन से, वचन से।
(५) करूँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं मन से, काया से।
(६) करूँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं वचन से, काया से।

(ग) (७) कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं मन से, वचन से।

(८) कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं मन से, काया से।

(९) कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, वचन से, काया से।

अंक २३ का भांगा ३—

यहाँ पहिले अंक २ का अर्थ है दो करण और दूसरे अंक ३ का अर्थ है तीन योग। अर्थात् दो करण तीन योग से सिर्फ ३ ही भांगे हो सकते हैं जैसे —

(अ) करूं नहीं, कराऊँ नहीं, मन से, वचन से काया से।

(ब) करूँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, मन से, वचन से, काया से।

(ग) कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, मन से, वचन से, काया से।

आंक ३१ का भांगा ३—

यहाँ पहले अंक ३ का अर्थ है तीन करण और दूसरे अंक १ का अर्थ है एक योग। अर्थात् तीन करण एक एक योग से सिर्फ ३ भांगे हो सकते हैं जैसे —

(क) करूँ नहीं, कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, मन से।

(ख) करूँ नहीं, कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, वचन से।

(ग) करूँ नहीं, कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, काया से।

अंक ३२ का भांगा ३—

यहाँ पहले ३ का अर्थ है तीन करण एवं दूसरे अंक २ का अर्थ है दो योग। अर्थात् तीन करण एवं दो योग से सिर्फ तीन भांगे हो सकते हैं जैसे —

(क) करूँ नहीं, कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, मन से, वचन से।

(ख) करूँ नहीं, कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, मन से, काया से।

(ग) करूँ नहीं, कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, वचन से काया से।

अंक ३३ का भांगा १—

यहाँ पहले अंक ३ का अर्थ है तीन करण और दूसरे अंक ३ का अर्थ है तीन योग। अर्थात् तीन करण एवं तीन योग से सिर्फ एक ही भांगा हो सकता है जैसे —

(१) करूँ नहीं, कराऊँ नहीं, अनुमोदूँ नहीं, मन से, वचन से, काया से।

(२५) पच्चीसवें बोले चारित्र पाँच—

(१) सामायिक चारित्र।

(२) छेदोपस्थापन चारित्र।

(३) परिहार विशुद्धि चारित्र।

(४) सूक्ष्म सम्पराय चारित्र।

(५) यथाख्यात चारित्र।

## पाठ २

# चउक्कित्थव

## इरियावहिय सुत्त

| | | | |
|---|---|---|---|
| इच्छामि, | पडिक्कमिउं, | इरियावहियाए | विराहणाए, |
| मैं इच्छा करता हूँ | निवृत्त होना (बचना) | मार्ग पर चलने आदि से होनेवाली | विराधना से |
| गमणागमणे, | पाणक्कमणे, | बीअक्कमणे, | हरियक्कमणे, |
| जाने आने में | किसी प्राणी को दबा कर | बीज को दबा कर | वनस्पति को दबा कर |
| ओसा - उत्तिंग - | पणग, - दग | मट्टी - | मक्कडासंताणा - |
| ओस कीड़ियों के बिल | पाँच वर्ण की काई | पानी-मिट्टी | मकड़ी के जाले को |
| सस्मण। | जे मे जीवा | विराहिया, | एगिंदिया, |
| आक्रमण हुआ हो। | जो मेरे से जीवों की | विराधना हुई हो, | एक इंद्रिय वाले, |
| बेइन्दिया, | तेइन्दिया, | चउरिन्दिया, | पंचिंदिया, |
| दो इंद्रियवाले, | तीन इंद्रियवाले, | चार इंद्रियवाले, | पाँच इंद्रियवाले |
| अभिहया, | वत्तिया, | लेसिया, | संघाइया, |
| सम्मुख आते चोट पहुँचाई हो, | धूल आदि से ढांके हों, | भूमि पर मसल हों, | इकट्ठे किये हों, |

जिणे अरिहंते कित्तइस्सं, चउवीसं पि
राग-द्वेष जीतने वाले 'जिन' तीर्थंकरों का मैं स्तवन करता हूँ चौबीस

केवली ॥१॥ उसभमजियं च वंदे संभवमभिणंदणं च
केवली ऋषभ और अजित को वंदन करता हूँ संभवनाथको पुन अभिनन्दन स्वामी को

सुमइं च। पउमप्पहं सुपासं जिणं च
सुमतिनाथको और पद्मप्रभुको सुपार्श्वनाथ जिन को और

चंदप्पहं वंदे ॥२॥ सुविहिं च पुप्फदंतं
चन्द्रप्रभुको वंदन करता हूं। सुविधिनाथ और (दूसरा नाम) पुष्पदन्त को

सीयल - सिज्जंस - वासुपुज्जं च
शीतलनाथको श्रेयांसनाथको वासुपूज्यको और

विमलमणंतं च जिणं धम्मं संतिं च वंदामि ॥३॥
विमलनाथको और जिन धर्मनाथको, शांतिनाथको वन्दन
अनन्तनाथको करता हूँ।

कुंथुं अरं च मल्लिं, वंदे मुणिसुव्वयं
कुंथुनाथ अरनाथ और मल्लिनाथ वन्दन करता मुनिसुव्रत
को को हूं को

नमिजिणं च। वंदामि रिट्ठनेमिं
नमिनाथ जिनको पुन वंदन करता हूँ अरिष्टनेमि

पास तह वद्धमाण च ॥४॥ एवमए
पार्श्वनाथ तथा वर्द्धमान ( महावीर ) इस प्रकार मेरे द्वारा
भगवान को

अभित्थआ, विहुयरयमला पहीणजरमरणा।
स्तवन किये पापरूप रजके जरा वृद्धावस्था और
गये मलसे रहित मरणसे मुक्त

चउवीसं पि जिणवरा, तित्थयरा मे पसीयंतु ॥५॥
चौबीस ही जिनवर तीर्थंकर देव मुझ पर प्रसन्न हों

कित्तियवंदियमहिया, जे ए लोगस्स
कीर्तन, वन्दन और भावसे जो ये लोकके
पूजन को प्राप्त हुए हैं।

उत्तमा सिद्धा। आरुग्गबोहिलाभं,
प्रधान सिद्ध हैं आरोग्य सम्यक्त्व का लाभ

समाहिवरमुत्तमं दिंतु ॥६॥ चंदेसु निम्मलयरा,
समाधिका वर उत्तम ( श्रेष्ठ ) देव। चन्द्रों से विशेष निर्मल

आइच्चेसु अहियं पयासयरा। सागरवरगंभीरा
सूर्योंसे अधिक प्रकाश करनेवाले महासमुद्र के समान
गम्भीर

सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ॥७॥
सिद्ध मोक्ष मुझको देवें

## सक्थुई

नमुत्थुण अरिहताण भगवतताण। आइगराण
नमस्कार हो अरिहंत भगवानको, वे धर्मके आदि
अरिहंत भगवान् कैसे हैं ? कर्त्ता

तित्थयराण सयसंबुद्धाण। पुरिसुत्तमाण
धर्मतीर्थकी अपने आप बोधको पुरुषों में उत्तम
स्थापना करने वाले प्राप्त हुए

पुरिससीहाण पुरिसवरपुण्डरीयाण पुरिसवरगंधहत्थीण
पुरुषोंमें सिंहके पुरुषोंमें पुण्डरीक कमलके पुरुषोंमें प्रधान गंध
समान समान निर्लेप हस्तिके समान

लोगुत्तमाण, लोगनाहाण, लोगहियाण।
लोकमें उत्तम लोकके नाथ लोकके हितकारी

लोगपईवाण लोगपज्जोअगराण। अभयदयाण,
लोकमें प्रदीपके लोकमें उद्योत अभयदान देने
समान करनेवाले वाले

चक्खुदयाण मग्गदयाण सरणदयाण
ज्ञानरूपी नेत्रोंको देनेवाले मोक्ष मार्गके देनेवाले सब जीवोंके शरणभूत

बोहिदयाण। जीवदयाण। धम्मदयाण,
बोधबीजके देनेवाले (सम्यक्त्वरूपी) जीवनके दाता धर्मके दाता

धम्मदेसयाण, धम्मनायगाण, धम्मसारहीण
धर्मोपदेशक धर्मके नायक धर्मरूपी रथके सारथी

धम्मवर - चाउरत-चक्कवट्टीण। दीवोत्ताण,
धर्ममें प्रधान और चार अतएव चक्रवर्ती संसार समुद्रमें द्वीपके
गतिका नाश करनेवाले के समान समान और रक्षक

सरणगइपइट्ठाण अप्पडिहयवर - नाण - दसण - धराण,
शरणागतों की रक्षा अप्रतिहत ऐसे श्रेष्ठ ज्ञान दर्शन के धारनेवाले
लता करने वाले

वियट्टछउमाणं। जिणाण, जावयाणं,
छद्म अर्थात् घातिक राग द्वेषको राग द्वेषको
कर्मोंसे रहित जीतनेवाले जितानेवाले

तिन्नाण, तारयाण, बुद्धाणं बोहयाणं,
संसार समुद्र से और दूसरोंको आप बुद्ध हैं दूसरोंको बोध
स्वयं तिरते हुए तारने वाले देनेवाले

मुत्ताण, मोअगाण। सव्वन्नूणं सव्वदरिसीणं,
स्वयं कर्मोंसे और औरोंको मुक्त सर्वज्ञ सर्वदर्शी
मुक्त करने वाले

सिव - अयल - अरुअ - अणंत - अक्खय-
कल्याणरूप स्थिर रोगसे रहित अनन्त अक्षय

अव्वाबाह - अपुणरावित्ति सिद्धिगइ - नामधेय
बाधा पीड़ा से पुनर्जन्म (से) सिद्धि गति नामक
रहित रहित

ठाणं, संपत्ताण, नमो-जिणाण, जियभयाण।
स्थानको प्राप्त हुए हैं, नमस्कार हो जिन जीत लिया है
भगवानको भय जिन्होंने।

## पाठ ३

# धर्म-अधर्म द्वार

( १ ) धर्म—आत्म-शुद्धिके साधनको धर्म कहते हैं।

उसके दो भेद हैं—

( १ ) सम्वर, ( २ ) निर्जरा

दूसरे शब्दोंमें—

( १ ) त्याग, ( २ ) तपस्या

अथवा उसके चार भेद हैं—

( १ ) ज्ञान, ( २ ) दर्शन, (३) चारित्र, ( ४ ) तपस्या।

दश भेद भी होते हैं—

( १ ) क्षमा, ( २ ) मुक्ति, ( ३ ) आर्जव, ( ४ ) मार्दव,

( ५ ) लाघव, ( ६ ) सयम, ( ७ ) सत्य, ( ८ ) तप,

( ९ ) त्याग, ( १० ) ब्रह्मचर्य।

आचरणकी शक्तिकी अपेक्षा धर्म दो प्रकार का है—

( १ ) आगार-धर्म ( गृहस्थ-धर्म )

( २ ) अनगार धर्म ( साधु धर्म )

आगार-धर्म के बारह भेद हैं—

( १ ) अहिंसा अणुव्रत

( २ ) सत्य-अणुव्रत

( ३ ) अचौर्य्य अणुव्रत

( ४ ) स्वदार-सन्तोष ( स्वपति सन्तोष ) अणुव्रत

( ५ ) इच्छा-परिमाण अणुव्रत
( ६ ) दिग्व्रत
( ७ ) उपभोग परिभोग-विरति
( ८ ) अनर्थ दण्ड विरति
( ९ ) सामायिक
( १० ) देशावकाशिक
( ११ ) पौषध
( १२ ) अतिथि संविभाग

अनगार-धर्म के पाँच भेद है—

( १ ) अहिंसा महाव्रत
( २ ) सत्य-महाव्रत
( ३ ) अचौर्य्य महाव्रत
( ४ ) ब्रह्मचर्य महाव्रत
( ५ ) अपरिग्रह-महाव्रत

( २ ) अधर्म के पाँच भेद है—

( १ ) हिंसा
( २ ) असत्य
( ३ ) चौर्य्य
( ४ ) मैथुन
( ५ ) परिग्रह

पाठ ४

# पुण्य-पाप द्वार

पुण्य—धार्मिक क्रिया के साथ होनेवाले शुभ कर्म-बन्ध को पुण्य कहते हैं।

पाप—अधार्मिक क्रिया के साथ होनेवाले अशुभ कर्म बन्ध को पाप कहते हैं।

धर्म और पुण्य दो हैं। धर्म आत्मा की सत्प्रवृत्ति है और पुण्य शुभ योग के द्वारा आत्मा के चिपकनेवाले शुभ कर्मपुद्गल है। इसी प्रकार अधर्म आत्मा की असत् प्रवृत्ति है और पाप उसके द्वारा चिपकनेवाले अशुभ कर्म पुद्गल है। पुण्य के लिए धर्म नहीं करना चाहिए। निर्जरा-धर्म के साथ वह अपने आप हो जाता है। जिस प्रकार अनाज के पीछे तूडी होती है, उसी प्रकार धर्म के पीछे पुण्य होता है। पुण्य और पाप दोनों बन्धन हैं। पुण्य शुभ बन्धन है और पाप अशुभ बन्धन है। इन दोनों बन्धनों के टूटने पर मोक्ष प्राप्त होता है।

---

पाठ ५

# दान-दया-अनुकम्पा-द्वार

(१) दान—अपने, पराये या दोनों के उपकार के लिए देना दान है।

वह दो प्रकार का है—

( १ ) पारमार्थिक, ( २ ) व्यावहारिक।

(१) पारमार्थिक—सयम का पोषण करनेवाले दान को पारमार्थिक दान कहते हैं।

उसके तीन भेद है—१—ज्ञानदान, २—सयतिदान, ३—अभयदान।

( १ ) ज्ञान दान

बले सूत्र अर्थ सिखाय ए, सुध मारग आणै ठाय ए।
आपै समकित चारित एह ए, धमदान छै आठमो तेह ए॥

( २ ) सयति दान

वले मिले सुपात्र आण ए, देवै निरदोषण द्रव्य जाण ए।
ए दान माखरो मान ए, दियाँ दलदर जावै भाग ए॥

( ३ ) अभय-दान

छ काय मारण रा त्याग ए, कोइ पचखै आण वैराग ए।
ए अभयदान कह्यो जिनराय ए, धम दान म मिलियो आय ए॥

(२) व्यावहारिक दान—लौकिक प्रवृत्ति चलाने के लिए दान देने को व्यावहारिक दान कहते हैं।

अवरत में दे दातार, ते किम उतरै भव पार।
छादो इण लाक रो ए, मारग नहीं मोखरो ए ॥

(२) दया—पाप आचरण से आत्म रक्षा करने को दया कहते हैं। केवल प्राण रक्षा को लौकिक दया कहते हैं।

गाय भैंस आक थोरनो, ए च्यारू ही दूध।
तिमि अनुकम्पा जाणज्यो, राखे मन म शुद्ध ॥
भोलेई मत भूलज्यो, अनुकम्पा रे नाम।
कीज्यो अन्तर पारखा, ज्यू सीझै आतम काम ॥

जीव जीवै ते दया नहीं, मरै हो ते तो हिंसा मत जाण
मारणवाला नैं हिंसा कही, नहीं मारै हो ते तो दया गुण खाण ॥
नीम आम्रादिक वृक्षनो, किणही कीधो हो वाढण रो नेम।
अनन्त घटी तिण जीवरी, वृक्ष उभो हो तिणरो धर्म केम ॥
लाड़ू घेवर आदि पक्वान नैं, त्यारा छोड्या हो आतम त्राणी ठाय।
वैराग बध्यो तिण जीव रे, लाड़ू रह्या हो तिरण धर्म न थाय ॥
दव दवो गाँव जलायवो, इत्यादिक हो सावद्य काय अनेक।
ए सब छोडावे सलझायनै, ए मगलां री हो विधि जाणो तुम एक ॥
चार हिंसक नै कुशीलिया, यारैं ताईं हो दीधो साधां उपदेश।
त्यानैं सोवद रा निरवद किया, एहवो छै हो जिन दया धम रेश ॥
चार तीन् समझायां थका बच रह्यो हो धणी रो कुशले खेम।
हिंसक तीन् प्रतिबोधियां, जीव बचिया हो किधा मारण रा नेम ॥
शील आदरियो तेहनी इस्तरी हो, पडी कुआ म जाय।
यारो पाप धम नहीं साधनै, रह्या मूवा हो तीनू ही अवरत मांय ॥

पाठ ६

# गुणस्थान-द्वार

आत्मा की क्रमिक विशुद्धि को गुणस्थान कहते हैं।

गुणस्थान चौदह हैं—

(१) मिथ्यादृष्टि—तत्त्व या तत्त्वों मे विपरीत श्रद्धा रखनेवाले प्राणी की आत्म विशुद्धि।

(२) सास्वादनसम्यग्दृष्टि—औपशमिक सम्यक्त्व से गिरने लग गया, पूरा गिरा नहीं, छह आवलिका अभी बाकी है, उस प्राणीकी आत्म-विशुद्धि।

(३) मिश्रदृष्टि—एक तत्त्व मे सन्देह रखनेवाले प्राणी की आत्म-विशुद्धि।

(४) अविरतिसम्यग्दृष्टि—जो सम्यग्दृष्टिव्रती नहीं होता, उसकी आत्म विशुद्धि।

(५) देशविरति—जो अश रूप में व्रती होता है, उसकी आत्म-विशुद्धि।

(६) प्रमत्तसयत—जो पूर्ण व्रती होने पर भी प्रमादी होता है, उसकी आत्म विशुद्धि।

(७) अप्रमत्तसयत—जो पूर्णव्रती और अप्रमादी होता है, उसकी आत्म विशुद्धि।

(८) निवृत्तिबादर—जो संयती स्थूल कषायसे निवृत्त होता है, उसकी आत्म-विशुद्धि।

(९) अनिवृत्तिबादर—जिसके स्थूल कषाय का थोडा अंश बाकी रहता है, उसकी आत्म विशुद्धि।

(१०) सूक्ष्मसम्पराय—जिसके सूक्ष्म लोभांश बाकी रहता है, उसकी आत्म विशुद्धि।

(११) उपशान्तमोह—जिसका मोह उपशान्त हो जाता है, उसकी आत्म-विशुद्धि।

(१२) क्षीणमोह—जिसका मोह क्षीण हो जाता है, उसकी आत्म-विशुद्धि।

(१३) सयोगीकेवली—केवली हो जाने पर भी जो मन, वचन, काया की प्रवृत्तिवाला होता है, उसकी आत्म विशुद्धि।

(१४) अयोगीकेवली—जो केवली योग की प्रवृत्ति रहित रहता उसकी आत्म विशुद्धि।

---

पाठ ७

# सम्यक्-दर्शन द्वार

सम्यक्-दर्शन—यथार्थ तत्त्व श्रद्धा को सम्यक्-दर्शन कहते हैं।

अरिहन्ता[1] मह देवो, जावज्जीव सुसाहुणो गुरुणो।
जिणपण्णत्त तत्त, इयसम्मत्त मए गहिअं॥

सम्यक्त्व के पाँच लक्षण हैं—

(१) शम—क्रोध आदि कषायों की शान्ति।
(२) संवेग—मोक्ष की अभिलाषा।
(३) निर्वेद—संसार से निवृत्ति।
(४) अनुकम्पा—प्राणीमात्र के प्रति न्याभाव।
(५) आस्तिक्य—आत्मा, कर्म आदि में विश्वास।

सम्यक्त्व के पाँच दूषण हैं—

(१) शंका—तत्त्वों में सन्देह करना।
(२) कांक्षा—कुमत की वांछा करना।
(३) विचिकित्सा—धर्म के फल में सन्देह करना।
(४) परपाखण्ड प्रशंसा—मिथ्यादृष्टि, और व्रतभ्रष्ट पुरुषों की प्रशंसा करना।
(५) पर पाखण्ड परिचय—मिथ्यादृष्टि और व्रत-भ्रष्ट पुरुषों का परिचय करना।

---

१ अरिहन्त मेरे देव हैं, साधु—पंचमहाव्रतधारी मेरे गुरु हैं। वीत रागभाषित मेरे तत्त्व हैं। इस प्रकार मैंने सम्यक्त्व ग्रहण किया है।

सम्यक्त्व के पाँच भूषण हैं—

(१) स्थैर्य—धर्म में स्थिर रहना।
(२) प्रभावना—धर्म की महिमा बढ़ाना।
(३) भक्ति—भक्ति करना।
(४) कौशल—धर्म की जानकारी प्राप्त करना।
(५) तीर्थसेवा—साधु संघ की उपासना करना।

---

## पाठ ८

# श्रावक-चिन्तन द्वार

तीन[1] मनोरथ

(१) कब[2] मैं अल्पमूल्य एवं बहुमूल्य परिग्रह का प्रत्याख्यान करूँगा।
(२) कब[3] मैं मुण्ड हो गृहस्थपन छोड़ साधुव्रत स्वीकार करूँगा।
(३) कब[4] मैं अपश्चिम मारणान्तिक संलेखना यानी अन्तिम अनशन में शरीर को झोंसकर—जुटाकर और भूमि पर गिरी हुई वृक्ष की डाली की तरह अडोल रखकर मृत्यु की अभिलाषा न करता हुआ विचरूँगा।

---

१ धार्मिक जागरण करनेवाला श्रावक इन तीन सद्भावनाओं का पल-पल चिंतन करता है।

२ कयाणमहं अप्पं वा बहुयं वा परिग्गहं परिच्चइस्सामि।

३ कयाणमहं मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइस्सामि।

४ कयाणमहं अपच्छिममारणांतियसंलेहणाझूसणाझूसिए भत्तपाण पडियाइक्खिए पाओवगए कालमणवकंखमाणे विहरिस्सामि।

(स्थानांगसूत्र स्थान ३)

## पाठ ६

# विश्राम द्वार

जैसे भारवाहक के चार विश्राम[1] हैं —

(१) गठरी को बाएँ से दाएँ कन्धे पर रखना।

(२) देह चिन्ता से निवृत्त होने के लिए उसे नीचे रखना।

(३) सार्वजनिक स्थान में विश्राम करना।

(४) स्थान पर पहुँच कर उसे उतार देना।

वैसे ही श्रावक के चार विश्राम हैं —

(१) शीलव्रत, गुणव्रत तथा उपवास ग्रहण करना।

(२) सामायिक तथा देशावकाशिक व्रत लेना।

(३) अष्टमी चतुर्दशी, अमावस्या और पूर्णिमा को प्रतिपूर्ण पौषध करना।

(४) अन्तिम-मारणान्तिक-संलेखना व्रत लेना।

---

१—एक भारवाहक बोझ से दबा जा रहा था। उसे जहाँ पहुँचना था, वह स्थान वहाँ से बहुत दूर था। उसने कुछ दूर पहुँच अपनी गठड़ी बाएँ से दाहिने कन्धे पर रख ली। (पहला विश्राम)

थोड़ा आगे बढ़ा और देह चिन्ता से निवृत्त होने के लिए गठड़ी नीचे रख दी। (दूसरा विश्राम)

उसे उठा फिर आगे चला। मार्ग लम्बा था। वजन भी बहुत था। इसलिए उसे एक सार्वजनिक स्थान में विश्राम लेने को रुकना पड़ा। (तीसरा विश्राम)

चौथी बार उसने अधिक हिम्मत के साथ उस भार को उठाया और वह ठीक वहीं जा ठहरा, जहाँ उसे जाना था। (चौथा विश्राम)

## पाठ १०

# श्रावक-गुण द्वार

(१) अल्पारम्भ[१]
(२) अल्पपरिग्रह[२]
(३) धार्मिक[३]
(४) धर्मानुग[४]
(५) धर्मिष्ठ[५]
(६) धर्मोत्पाति[६]
(७) धर्मप्रलोकी[७]
(८) धर्मयुक्तिकर[८]

---

१—आवश्यकता के उपरान्त आरम्भ न करनेवाले अर्थात् श्रावक अनर्थ हिंसा न करे और अर्थ हिंसा का संकोच करे।

२—आवश्यकता के उपरान्त धन धान्य आदि का संग्रह न करनेवाले, उनका परिमाण करनेवाले और उन पर अधिक ममत्व न रखनेवाले।

३—हर समय धर्म यानी त्याग, तपस्या की भावना रखनेवाले।

४—धर्म के अनुगामी होनेवाले।

५—धर्म को इष्ट माननेवाले।

६—धर्म का प्रचार करनेवाले।

७—धर्म के रहस्य को बार-बार समझने का प्रयास करनेवाले।

८—आजीविका करते हुए भी धर्म को न भुलानेवाले और हर एक काम में धर्म को याद रखनेवाले।

(९) सुशील[१]
(१०) सुव्रत[२]
(११) पापपरिहारी[३]
(१२) श्रमणोपासक[४]
(१३) तत्त्व[५]
(१४) महायानपेक्षी[६]
(१५) दृढ श्रद्धालु[७]
(१६) स्वच्छ हृदय[८]
(१७) विश्वस्त[९]
(१८) समाराधक[१०]

---

१ - सदाचारी एवं सात दुर्व्यसनों से परहेज रखनेवाले।
२—विधिवत् व्रत नियमों का पालन करनेवाले।
३—प्राणातिपात आदि १८ पापों का यथाशक्ति परिहार करनेवाले।
४—श्रमण—शुद्ध साधु साध्वियों की उपासना करनेवाले।
५—जीव, अजीव आदि नव तत्त्वों को जाननेवाले।
६—कष्ट आ पड़ने पर देवताओं की सहायता की अपेक्षा न रखनेवाले।
७—धार्मिकता में अडिग और अडोल ( स्थिर ) रहनेवाले।
८—दिल को साफ रखनेवाले। विश्वासघात, कपट, निन्दा, ईर्ष्या आदि अवगुणों से बचनेवाले।
९—अपने विशुद्ध व्यवहार और आचरणों से जनता के विश्वास को प्राप्त करनेवाले।
१०—समय समय पर नियमित रूप से सामायिक, पौषध, उपवास, स्वाध्याय, आदि करनेवाले।

(१९) अतिथिसंविभागी[1]
(२०) बाह्याडम्बरवर्जक[2]
(२१) धैर्यवान्[3]

---

पाठ ११

## व्रताव्रत द्वार

त्याग को व्रत और अत्याग—खुलावट को अव्रत कहते हैं। व्रत का दूसरा नाम चारित्र है। वे पाँच हैं—

(१) सामायिक—सर्वथा सावद्य योग की विरति।

(२) छेदोपस्थाप्य—महाव्रतों का आरोपण—सावद्य योग का विस्तारपूर्वक प्रत्याख्यान।

(३) परिहारविशुद्ध—'परिहारविशुद्धि' नामक तपस्या युक्त होना।

(४) सूक्ष्मसम्पराय—दशवें गुणस्थान का चारित्र।

(५) यथाख्यात—वीतराग—चारित्र।

---

१—श्रमण-निर्ग्रन्थों को प्रासुक (निर्जीव), एषणीय (कल्पनीय) आहार, पानी आदि (आहार, पानी, खाद्य, स्वाद्य, वस्त्र, पात्र, कम्बल, पाद प्रोंछन, औषध, भैषज्य, पाट, बाजोट इत्यादि) देनेवाले।

२—केवल दूसरेकी देखादेखी बाह्य आडम्बर न करनेवाले।

३—धीरज रखनेवाले, मान और अपमान में समभाव रखनेवाले।

चारित्र के अधिकारी निर्ग्रन्थ होते हैं। वे छह प्रकार के हैं—

(१) पुलाक—संयम को कुछ असार करनेवाला।
(२) बकुश—चारित्र में अतिचार के धब्बे लगानेवाला।
(३) प्रतिसेवना-कुशील[1]
(४) कषाय कुशील[2] (कुत्सित आचार करनेवाला)
(५) निर्ग्रन्थ—वीतराग
(६) स्नातक—केवली

अनगार-धर्म पालनेवालों के किसी भी अव्रत नहीं होता। अतः वे पूर्णव्रती होते हैं और अगार-धर्म पालनेवालों के व्रत भी होते हैं और अव्रत भी, अतः वे व्रताव्रती होते हैं। अगार-धर्म पालनेवालों के जितनी हद तक व्रत होता है, वह धर्म है और बाकी का जो अव्रत रहता है, वह अधर्म है।

साधु[3] श्रावक रतनां री माला, एक मोटी दूजी नान्ही रे।
गुण गूंथ्या च्यारूं तीरथना, अव्रत रह गई काणी रे॥
श्रावक सुपातर करता रे लेखे, अव्रत लेखे जहर रो बटको रे।
अव्रत रो इणरे काम पड़े तो, छह काय रो करजावे गटको रे॥
श्रावक सुपातर कर्‍यां सूं हुवे, अव्रत सूं अव्रती जाणो रे।
अव्रत रो इणरे काम पड़े तो, छह काय रा करे घमसाणो रे॥

---

१—दोषाचरण से मलिन
२—कषाय से मलिन
३—आचार्य भिक्षु।

श्रावक ने वरतां कर सजती कीजे, गुण रतनां री खाणी रे।
वरत आदरतां अवरत राखी, तिण सूँ कोरो असजती जाणो रे॥

हिवै सुणज्यो चतुर सुजाण, श्रावक रतनां री खाण।
व्रतां कर जाणज्यो ए, उरटो मत ताणज्यो ए॥

केइ रूख बाग म होय, अम्ब धतूरा दोय।
फल नहीं सारखा ए, कीज्या पारखा ए॥

आंबा सूँ लिव लाय, गींचे धतूरा आय।
आशा मन अति घणी ए, अब लेवा तणी ए॥

पिण अब गयो कुमलाय, धतूर रह्यो डहडाय।
आयनै जावै जरै ए, नयणा नीर झरै ए॥

इण दृष्टान्ते जाण, श्रावक व्रत अम्ब समाण।
अवरत थलगी रही ए, धतूरा सम कही ए॥

पाठ १२

# उपासक ( श्रावक ) प्रतिमा द्वार

( १ ) दर्शन प्रतिमा ।

समय—१ मास

विधि—सर्व-धर्म ( पूर्ण-धर्म ) रुचि होना, सम्यक्त्व विशुद्धि रखना—सम्यक्त्व के दोषों को वर्जना ।

( २ ) व्रत-प्रतिमा ।

समय—२ मास ।

विधि—पांच अणुव्रत और तीन गुणव्रत धारण करना तथा पौषध उपवास करना ।

( ३ ) सामायिक प्रतिमा ।

समय—३ मास

विधि—सामायिक और देशावकाशिक व्रत धारण करना ।

( ४ ) पौषध-प्रतिमा ।

समय—४ मास ।

विधि—अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या, पूर्णमासी को प्रति-पूर्ण पौषध व्रत का पालन करना ।

( ५ ) कायोत्सर्ग प्रतिमा ।

समय—५ मास ।

विधि—रात्रि को कायोत्सर्ग करना । पांचवीं प्रतिमावाला ( १ ) स्नान नहीं करता, ( २ ) रात्रि-भोजन नहीं करता, ( ३ ) धोती की लांग नहीं देता, ( ४ ) दिन में ब्रह्मचारी रहता है, ( ५ ) रात्रि में मैथुन का परिमाण करता है ।

( ६ ) ब्रह्मचर्य प्रतिमा ।

समय—६ मास ।

(७) सचित्त-प्रतिमा।
समय—७ मास।
विधि—सचित्त-आहार का परित्याग करना।
(८) आरम्भ-प्रतिमा।
समय—८ मास।
विधि—स्वयं आरम्भ समारम्भ न करना।
(९) प्रेष्य प्रतिमा।
समय—९ मास।
विधि—नौकर चाकर आदि से आरम्भ समारम्भ न कराना।
(१०) उद्दिष्ट वर्जक प्रतिमा।
समय—१० मास।
विधि—उद्दिष्ट भोजन का परित्याग करना। दशवीं प्रतिमावाला बालों का क्षुर से मुण्डन करता है अथवा शिखा धारण करता है। घर सम्बन्धी प्रश्न करने पर "मैं जानता हूँ या नहीं"—इन दो वाक्यों से ज्यादा नहीं बोलता।
(११) श्रमणभूत प्रतिमा।
समय—११ मास।
विधि—ग्यारहवीं प्रतिमावाला क्षुर से मुण्डन करता है अथवा लोच करता है और साधु का आचार, भण्डोपकरण एवं वेश धारण करता है। केवल ज्ञातिवर्ग से उसका प्रेम-बन्धन नहीं टूटता। इसलिए वह भिक्षा के लिए केवल ज्ञातिजनों में ही जाता है।

अगली प्रतिमा में पहली प्रतिमा का त्याग यथावत् (चालू) रहता है।

## पाठ १३

# प्रमाण द्वार

यथार्थ निर्णय करनेवाले ज्ञान को प्रमाण कहते हैं। यह दो प्रकार का होता है—

(१) प्रत्यक्ष (२) परोक्ष।

(१) प्रत्यक्ष—स्पष्टतया विषय करनेवाले ज्ञान को प्रत्यक्ष कहते हैं।

इसके दो भेद हैं

(१) पारमार्थिक (२) सांव्यवहारिक।

पारमार्थिक प्रत्यक्ष के तीन भेद हैं

(१) केवल (२) अवधि (३) मनःपर्यव।

सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष के चार भेद हैं—

(१) अवग्रह (२) ईहा (३) अवाय, (४) धारणा।

(२) परोक्ष—अस्पष्टतया विषय करनेवाले ज्ञान को परोक्ष कहते हैं

यह दो प्रकार का होता है—

(१) मति, (२) श्रुत।

अथवा इसके पाँच भेद हैं—

(१) स्मृति, (२) प्रत्यभिज्ञा, (३) तर्क, (४) अनुमान, (५) आगम।

सप्तभगी[1]

(१) कथचित् घट है।
(२) कथचित् घट नहीं है।
(३) कथचित् घट है और कथचित् घट नहीं है।
(४) कथचित् घट अवक्तव्य है।
(५) कथचित् घट है और कथचित् अवक्तव्य है।
(६) कथचित् घट नहीं है और कथचित् अवक्तव्य है।
(७) घट कथचित् है, घट कथचित् नहीं है और कथचित् अवक्तव्य है।

नय—वस्तु के किसी एक अश को ग्रहण करनेवाले और अन्य अशो का खण्डन न करनेवाले ज्ञाता के अभिप्राय को नय कहते है।

नय सात हैं—

(१) नैगम, (२) सग्रह, (३) व्यवहार, (४) ऋजुसूत्र, (५) शब्द, (६) समभिरूढ, (७) एवभूत।

अथवा नय के दो प्रकार हैं—

(१) निश्चय नय, (२) व्यवहार नय।

---

१—प्रश्नकर्त्ताके अनुरोध से एक वस्तुमें अविरोधरूपसे 'स्यात्' शब्दसे युक्त जो विधि निषेधकी कल्पना की जाती है, उस सप्तभगी कहते हैं।

(१) निश्चय नय—तात्त्विक अर्थ का कथन करनेवाले विचार को निश्चय नय कहते हैं। जैसे—भौंरा पांच वर्णवाला होता है।

(२) व्यवहार नय—लोक प्रसिद्ध अर्थ को माननेवाले विचार को व्यवहार नय कहते हैं। जैसे—भौंरा काला होता है।

प्रमेय—द्रव्यपर्यायात्मक वस्तु को प्रमेय (प्रमाण का विषय) कहते हैं।

निक्षेप—प्रस्तुत अर्थ का बोध कराने के लिए शब्द का सविशेष प्रयोग करना निक्षेप है।

वे चार हैं—

(१) नाम, (२) स्थापना, (३) द्रव्य, (४) भाव।

पाठ १४

# आगम द्वार

आगम—भगवान् महावीर द्वारा अर्थरूप में कहे हुए और गणधरों एवं स्थविरों द्वारा गूंथे हुए शास्त्रों को आगम कहते हैं।

वे दो भागों में विभक्त हैं—

(१) अङ्ग, (२) अङ्ग बाह्य (उपाङ्ग)।

अङ्ग बारह हैं —

(१) आचाराङ्ग, (२) सूत्रकृताङ्ग, (३) स्थानाङ्ग, (४) समवायाङ्ग, (५) भगवती—विवाहप्रज्ञप्ति या व्याख्या प्रज्ञप्ति, (६) ज्ञातृधर्मकथा (७) उपासकदशा, (८) अन्तकृद्दशा, (९) अनुत्तरौपपातिकदशा, (१०) प्रश्नव्याकरण, (११) विपाकश्रुत, (१२) दृष्टिवाद।

इनको द्वादशांगी या गणिपिटक भी कहते हैं।

दृष्टिवाद के पांच भेद हैं—

(१) परिकर्म, (२) सूत्र, (३) पूर्वानुयोग, (४) पूर्वगत, (५) चूलिका।

चवदह पूर्व पूर्वगत के अन्तर्गत हैं।

उपांग बारह हैं—

(१) औपपातिक, (२) राजप्रश्नीय, (३) जीवाभिगम, (४) प्रज्ञापना, (५) जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, (६) चन्द्रप्रज्ञप्ति,

(७) सूर्यप्रज्ञप्ति, (८) निरयावलिका (९) कल्पवतंसिका,
(१०) पुष्पिका, (११) पुष्पचूलिका, (१२) वृष्णिदशा।

ये बारह उपाङ्ग भिन्न भिन्न स्थविरों ( आचार्यों ) के रचे हुए हैं।

मूल चार हैं—

(१) दशवैकालिक, (२) उत्तराध्ययन, (३) अनुयोगद्वार
(४) नन्दी।

छेद चार हैं—

(१) निशीथ, (२) व्यवहार, (३) बृहत्कल्प,
(४) दशाश्रुतस्कन्ध।

आवश्यक एक है—

(१) प्रतिक्रमणसूत्र।

ग्यारह[1] अङ्ग स्वतः प्रमाण हैं और बाकी के आगम या ग्रन्थ जो इनसे मिलते हैं, वे ही प्रमाण हैं।

चार अनुयोग—

(१) द्रव्यानुयोग[2], (२) चरणकरणानुयोग[3], (३) गणितानुयोग[4], (४) धर्मकथानुयोग[5]।

---

१—बारहवाँ अंग दृष्टिवाद लुप्त है।

२—जिसमें द्रव्योंका कथन हो।

३—जिसमें चारित्रका कथन हो।

४—जिसमें गणित विषयका वर्णन हो।

५—जिसमें धर्म कथाएँ हों।

पाठ १५

# प्रश्नोत्तर द्वार

(१) पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति (एक-इन्द्रियवाले) जीवो मे —

गति ? तिर्यञ्च। जाति ? एकेन्द्रिय।

काय ? अपनी अपनी। इन्द्रिय ? स्पर्शन।

पर्याप्ति ? प्रथम चार—(१) आहार-पर्याप्ति, (२) शरीर-पर्याप्ति, (३) इन्द्रिय पर्याप्ति, (४) श्वासोच्छ्वास-पर्याप्ति।

प्राण ? चार—(१) स्पर्शन-इन्द्रिय प्राण, (२) काय बल (प्राण), (३) श्वासोच्छ्वास-प्राण, (४) आयुष्य प्राण।

शरीर ? औदारिक, तैजस, कार्मण। वायु मे वैक्रिय भी होता है।

योग ? औदारिक, औदारिकमिश्र, कार्मण। वायु मे वैक्रिय और वैक्रिय-मिश्र भी होता है।

उपयोग ? तीन—(१) मति अज्ञान, (२) श्रुत अज्ञान, (३) अचक्षु-दर्शन।

(२) कृमि, लट, शख, कोडी, जोंक आदि (दो इन्द्रियवाले) जीवोमे —

गति ? तिर्यंच। जाति ? द्वीन्द्रिय। काय ? त्रस।

इन्द्रिय ? दो—(१) स्पर्शन, (२) रसन।

पर्याप्ति ? प्रथम पाँच—( १ ) आहार-पर्याप्ति, (२) शरीर-पर्याप्ति, ( ३ ) इन्द्रिय-पर्याप्ति, ( ४ ) श्वासोच्छ्वास-पर्याप्ति, (५) भाषा पर्याप्ति।

प्राण ? छह—( १ ) स्पर्शन-इन्द्रिय प्राण, ( २ ) काय-बल ( प्राण ), ( ३ ) श्वासोच्छ्वास प्राण, ( ४ ) आयुष्य-प्राण, ( ५ ) रसन-इन्द्रिय-प्राण, ( ६ ) वचन बल ( प्राण )।

शरीर ? तीन—(१) औदारिक, (२) तैजस, (३) कार्मण।

योग ? चार—(१) औदारिक, (२) औदारिक-मिश्र, (३) कार्मण, (४) व्यवहार वचन।

उपयोग ? पाँच—(१) मति ज्ञान, (२) श्रुत ज्ञान, (३) मति-अज्ञान, ( ४ ) श्रुत-अज्ञान, ( ५ ) अचक्षु-दर्शन।

( ३ ) चींटी, मकोड़े, जू, लटमल आदि ( तीन इन्द्रियवाले ) जीवों में —

गति ? तिर्यञ्च। जाति ? त्रीन्द्रिय। काय ? त्रस।

इन्द्रिय ? तीन—( १ ) स्पर्शन, ( २ ) रसन, ( ३ ) घ्राण।

पर्याप्ति ? प्रथम पाँच ( १ ) आहार पर्याप्ति, ( २ ) शरीर-पर्याप्ति, ( ३ ) इन्द्रिय पर्याप्ति, (४) श्वासोच्छ्वास-पर्याप्ति, ( ५ ) भाषा पर्याप्ति।

प्राण ? सात—( १ ) स्पर्शन-इन्द्रिय-प्राण, ( २ ) काय-बल ( प्राण ), ( ३ ) श्वासोच्छ्वास प्राण, (४) आयुष्य प्राण, (५) रसन इन्द्रिय-प्राण, (६) वचन-बल (प्राण), (७) घ्राण-इन्द्रिय प्राण।

शरीर ? तीन—( १ ) औदारिक, ( २ ) तैजस, ( ३ ) कार्मण।

योग ? चार—( १ ) औदारिक, ( २ ) औदारिक मिश्र, ( ३ ) कार्मण, (४) व्यवहार वचन।

उपयोग ? पांच—( १ ) मति अज्ञान, ( २ ) श्रुत अज्ञान, ( ३ ) मति ज्ञान, ( ४ ) श्रुत ज्ञान, ( ५ ) अचक्षु-दर्शन।

( ४ ) टिड्डी, पतंग, भौंरा, मक्खी, मच्छर, बिच्छू आदि ( चार इन्द्रियवाले ) जीवों में —

गति ? तिर्यंच।

जाति ? चतुरिन्द्रिय।

काय ? त्रस।

इन्द्रिय ? चार—( १ ) स्पर्शन, ( २ ) रसन, ( ३ ) घ्राण, ( ४ ) चक्षु।

पर्याप्ति ? प्रथम पांच—( १ ) आहार-पर्याप्ति, ( २ ) शरीर-पर्याप्ति, ( ३ ) इन्द्रिय पर्याप्ति, (४) श्वासोच्छ्वास-पर्याप्ति, ( ५ ) भाषा पर्याप्ति।

प्राण ? आठ—( १ ) स्पर्शन-इन्द्रिय प्राण, ( २ ) काय-बल ( प्राण ), ( ३ ) श्वासोच्छ्वास-प्राण, ( ४ ) आयुष्य प्राण, ( ५ ) रसन इन्द्रिय प्राण, ( ६ ) वचन-बल ( प्राण ), ( ७ ) घ्राण-इन्द्रिय-प्राण, ( ८ ) चक्षु इन्द्रिय-प्राण।

शरीर ? तीन—( १ ) औदारिक, ( २ ) तैजस, ( ३ ) कामण।

योग ? चार—( १ ) औदारिक, ( २ ) औदारिक मिश्र, ( ३ ) कामण, ( ४ ) व्यवहार-वचन।

उपयोग ? छह—( १ ) मति ज्ञान, ( २ ) श्रुत ज्ञान, ( ३ ) मति-अज्ञान, ( ४ ) श्रुत-अज्ञान, ( ५ ) चक्षु-दर्शन, ( ६ ) अचक्षु दर्शन।

( ५ ) पञ्चेन्द्रिय—तिर्यञ्च, मनुष्य, देव और नारक।

( क ) तिर्यञ्च—हाथी, घोड़ा, बैल, गाय, भैंस आदि ( पांच इन्द्रियवाले ) जीवों में —

गति ? तिर्यञ्च। जाति ? पञ्चेन्द्रिय। काय ? त्रस।

इन्द्रिय ? पांच—( १ ) स्पर्शन, ( २ ) रसन, ( ३ ) घ्राण, ( ४ ) चक्षु, ( ५ ) श्रोत्र।

पर्याप्ति ? छह—( १ ) आहार पर्याप्ति, ( २ ) शरीर-पर्याप्ति, ( ३ ) इन्द्रिय पर्याप्ति, ( ४ ) श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति, ( ५ ) भाषा पर्याप्ति, ( ६ ) मन पर्याप्ति।

प्राण १ दश—( १ ) स्पर्शन इन्द्रिय प्राण, ( २ ) काय-बल-प्राण, ( ३ ) श्वासोच्छ्वास प्राण, ( ४ ) आयुष्य प्राण, ( ५ ) रसन इन्द्रिय प्राण, ( ६ ) वचन बल-प्राण, ( ७ ) घ्राण इन्द्रिय प्राण, ( ८ ) चक्षु-इन्द्रिय-प्राण, ( ९ ) श्रोत्रेन्द्रिय-प्राण, ( १० ) मन बल-प्राण।

शरीर १ चार—( १ ) औदारिक, ( २ ) तैजस, (३) कार्मण, ( ४ ) वैक्रिय।

योग १ तेरह—( १ ) सत्य-मन-योग, (२) असत्य-मन-योग, ( ३ ) मिश्र-मन योग, ( ४ ) व्यवहार-मन-योग, ( ५ ) सत्य-वचन-योग ( ६ ) असत्य वचन योग, ( ७ ) मिश्र-वचन योग, ( ८ ) व्यवहार-वचन योग, (९) औदारिक काय-योग, ( १० ) औदारिक मिश्र-काय-योग, ( ११ ) वैक्रिय काय-योग, ( १२ ) वैक्रिय-मिश्र काय योग, ( १३ ) कार्मण-काय-योग।

उपयोग १ नौ—( १ ) मति ज्ञान, ( २ ) श्रुत ज्ञान, ( ३ ) अवधि ज्ञान, ( ४ ) मति अज्ञान, ( ५ ) श्रुत अज्ञान, ( ६ ) विभंग अज्ञान, ( ७ ) चक्षु दर्शन, ( ८ ) अचक्षु दर्शन, ( ९ ) अवधि दर्शन।

स—मनुष्य में—

गति १ मनुष्य। जाति १ पंचेन्द्रिय। काय १ त्रस।

इन्द्रिय ? पांच—( १ ) स्पर्शन, ( २ ) रसन, ( ३ ) घ्राण, ( ४ ) चक्षु, ( ५ ) श्रोत्र।

पर्याप्ति ? छह—( १ ) आहार पर्याप्ति, ( २ ) शरीर-पर्याप्ति, ( ३ ) इन्द्रिय पर्याप्ति, ( ४ ) श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति, ( ५ ) भाषा पर्याप्ति, ( ६ ) मन पर्याप्ति।

प्राण ? दश—( १ ) स्पर्शन इन्द्रिय प्राण, ( २ ) काय-बल ( प्राण ), ( ३ ) श्वासोच्छ्वास प्राण, ( ४ ) आयुष्य प्राण, ( ५ ) रसन इन्द्रिय-प्राण, ( ६ ) वचन बल ( प्राण ), ( ७ ) घ्राण-इन्द्रिय-प्राण, ( ८ ) चक्षु इन्द्रिय-प्राण ( ९ ) श्रोत्रेन्द्रिय प्राण, (१०) मन-बल ( प्राण )।

शरीर ? पांच—( १ ) औदारिक, ( २ ) वैक्रिय, ( ३ ) आहारक, ( ४ ) तैजस, ( ५ ) कार्मण।

योग ? पन्द्रह—( १ ) सत्य मन-योग, ( २ ) असत्य मन-योग, ( ३ ) मिश्र मन-योग ( ४ ) व्यवहार मन योग ( ५ ) सत्य वचन-योग, ( ६ ) असत्य-वचन-योग, ( ७ ) मिश्र वचन-योग, ( ८ ) व्यवहार-वचन योग, (९) औदारिक-काय-योग, ( १० ) औदारिक-मिश्र काय-योग, ( ११ ) वैक्रिय काय योग, ( १२ ) वैक्रिय मिश्र-काय-योग, ( १३ ) आहारक-

काय योग, (१४) आहारक-मिश्र काय-योग, (१५) कार्मण काय-योग।

उपयोग ? बारह—(१) मति ज्ञान, (२) श्रुत-ज्ञान, (३) अवधि ज्ञान, (४) मनपर्यव ज्ञान, (५) केवल ज्ञान, (६) मति-अज्ञान, (७) श्रुत-अज्ञान, (८) विभंग-अज्ञान, (९) चक्षु दर्शन, (१०) अचक्षु-दर्शन, (११) अवधि दर्शन, (१२) केवल-दर्शन।

ग—देव और नारक में—

गति ? क्रमशः देव और नारक। जाति ? पंचेन्द्रिय।

काय ? त्रस।

इन्द्रिय ? पाँच—(१) स्पर्शन, (२) रसन, (३) घ्राण, (४) चक्षु, (५) श्रोत्र।

पर्याप्ति ? देव में—पांच—(१) आहार-पर्याप्ति, (२) शरीर-पर्याप्ति (३) इन्द्रिय-पर्याप्ति, (४) श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति, (५) भाषा*-मन-पर्याप्ति।

नारक में छहों पाई जाती हैं।

प्राण ? दश—(१) स्पर्शन इन्द्रिय-प्राण, (२) काय-बल (प्राण), (३) श्वासोच्छ्वास-प्राण, (४)

* इनके मन और भाषा को एक माना जाता है।

आयुष्य प्राण, (५) रसन-इन्द्रिय प्राण, (६) वचन-बल (प्राण), (७) घ्राण-इन्द्रिय-प्राण, (८) चक्षु-इन्द्रिय प्राण, (९) श्रोत्रेन्द्रिय प्राण, (१०) मन बल (प्राण)

शरीर ? तीन—(१) वैक्रिय, (२) तैजस, (३) कार्मण।

योग ? ग्यारह (१) सत्य मन योग (२) असत्य मन-योग, (३) मिश्र मन-योग, (४) व्यवहार-मन-योग, (५) सत्य वचन योग, (६) असत्य-वचन-योग, (७) मिश्र-वचन-योग, (८) व्यवहार वचन योग, (९) वैक्रिय-काय योग, (१०) वैक्रिय-मिश्र-काय-योग, (११) कार्मण-काय-योग।

उपयोग ? नौ—(१) मति ज्ञान, (२) श्रुत ज्ञान (३) अवधि-ज्ञान, (४) मति-अज्ञान (५) श्रुत अज्ञान, (६) विभङ्ग-अज्ञान, (७) चक्षु दर्शन, (८) अचक्षु दर्शन, (९) अवधि दर्शन।

(६) एकेन्द्रिय सूक्ष्म या बादर ? दोनों।
बाकी के जीव सूक्ष्म या बादर ? बादर।
एकेन्द्रिय त्रस अथवा स्थावर ? स्थावर।
बाकी के जीव त्रस या स्थावर ? त्रस।
चतुरिन्द्रिय तक के जीव संज्ञी या असंज्ञी ? असंज्ञी।

पचेन्द्रिय के जीव सन्नी या असन्नी ? गर्भज और उपपातज ( देव और नारक ) सन्नी और जो गर्भज नहीं, वे असन्नी ।

( ७ ) जीव छह ( द्रव्य ) मे कौन ? नव ( तत्त्व ) मे कौन ?

छह मे जीव, नव मे जीव, आस्रव सम्वर, निर्जरा, मोक्ष ।

अजीव, छह मे कौन ? नव मे कौन ?

छह मे धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल ,

नव मे अजीव, पुण्य, पाप, बन्ध ।

पुण्य छह में कौन ? नव मे कौन ?

छह मे पुद्गल , नव मे अजीव, पुण्य, बन्ध ।

पाप छह मे कौन ? नव मे कौन ?

छह मे पुद्गल , नव मे अजीव, पाप, बन्ध ।

आस्रव छह मे कौन ? नव मे कौन ?

छह मे जीव , नव मे जीव, आस्रव ।

सम्वर छह मे कौन ? नव मे कौन ?

छह मे जीव , नव मे जीव, सम्वर ।

निर्जरा छह मे कौन नव मे कौन ?

छह में जीव , नव मे जीव, निर्जरा ।

बन्ध छह मे कौन ? नव में कौन ?

छह मे पुद्गल , नव मे अजीव, पुण्य, पाप, बन्ध ।

मोक्ष छह मे कौन ? नव मे कौन ?

छह मे जीव , नव मे जीव, मोक्ष ।

---

## पाठ १६

# अणुव्रत-प्रार्थना

( राग—उस हिमालय की चोटी से )

बड़े भाग्य हैं भगिनी बन्धुओ, जीवन सफल बनायें हम।
आत्म साधना के सत्पथ में, अणुव्रती बन पायें हम॥
अपरिग्रह अस्तेय, अहिंसा, सच्चे सुख के साधन हैं।
सुखी देश हो सत्य अकिंचन, संयम ही जिनका धन है॥
इसी दिशा में दृढ़ निष्ठा से क्यों नहीं कदम बढ़ायें हम।
आत्म साधना के सत्पथ में, अणुव्रती बन पायें हम ॥१॥

बड़े यदि व्यापारी हों, प्रामाणिकता रख पायेंगे।
राज्य-कर्मचारी भी होंगे, रिश्वत कभी न खायेंगे॥
दृढ़ आस्था, आदर्श नागरिकता, के नियम निभायें हम।
आत्म साधना के सत्पथ में, अणुव्रती बन पायें हम ॥२॥

गृहिणी हो, गृहपति हो चाहे, विद्यार्थी अध्यापक हो।
वैद्य, वकील कोई हो सब में, नैतिक निष्ठा व्यापक हो॥
धर्मशास्त्र के धार्मिकता को, आचरणों में लायें हम।
आत्म साधना के सत्पथ में, अणुव्रती बन पायें हम ॥३॥

अच्छा हो अपने नियमों से, हम अपना कल्याण करें।
नहीं दूसरे बध बन्धन से मानवता की शान हरें॥

यह विवेक मानव का निज गुण, इसका गौरव गायें हम।
आत्म-साधना के सत्पथ में, अणुव्रती बन पायें हम ॥४॥

आत्म-शुद्धि के आन्दोलन में, तन मन अर्पण कर देंगे।
कड़ी जाँच हो, लिए व्रतों में आँच नहीं आने देंगे॥

भौतिकवादी प्रलोभनों में, कभी न हृदय लुभाय हम।
आत्म-साधना के सत्पथ में, अणुव्रती बन पायें हम ॥५॥

सुधरे व्यक्ति, समाज व्यक्ति से, उसका असर राष्ट्र पर हो।
जाग उठे जन-जन का मानस, ऐसी जागृति घर-घर हो॥

'तुलसी' सत्य, अहिंसा की, जय-विजय ध्वजा फहराय हम।
आत्म-साधना के सत्पथ में अणुव्रती बन पाय हम ॥६॥

## प्रश्न

१—सब में नैतिक निष्ठा व्यापक हो से क्या मतलब समझते हो ?

२—भौतिकवादी प्रलोभन का क्या मतलब है ?

३—निम्न शब्दों के अर्थ बताओ—

सत्पथ, अस्तेय, अकिंचन, आस्था, अपरिग्रह, अपण।

# द्वितीय खण्ड

## पाठ १

# एकाकलम्बी महावीर

भगवान महावीर दीक्षा अंगीकार कर कुमारी ग्राम पहुँचे। सन्ध्या के समय भगवान गांव के पास ध्यान किये खड़े थे। उस वक्त एक ग्वाला बैलों के साथ आया और बैलों को वहीं छोड़ कर गांव की ओर चला गया। जब वापिस लौटा तो उसने बैल वहां नहीं पाये। वह दौड़ा दौड़ा भगवान के पास आया और बोला महाराज! क्या आपको मालूम है कि बैल किधर गये हैं? भगवान ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। उसने सोचा कि शायद इनको मालूम नहीं होगा। वह बैलों की खोज में रात भर भटकता रहा पर उसे बैल न मिले। सारी रात घूम फिर कर वहीं लौटा, तब बैल भगवान के निकट बैठे मिल गये। यह देखते ही वह आग बबूला हो गया और हाथ में कोड़ा लेकर भगवान को मारने के लिए दौड़ा। इतने में वहां सौधर्मेन्द्र आ पहुँचा।

उसने भगवान से भिक्षा लेने की प्रार्थना की। भगवान वहाँ पधारे। उसी दिन राजकुमार के यहाँ ईख के रस के १०८ कलश आये हुए थे। तीर्थंकर पात्र नहीं रखते इसलिए उन्होंने अंजलि मांड दी। श्रेयांस कुमार ने रस बहराया उस वक्त देवताओं ने दान की महिमा गाई। देव दुंदुभि से आकाश मण्डल गूँज उठा। जिस दिन यह एक वर्ष की तपस्या पूरी हुई, वह दिन वैशाख सुदी ३ का था। उस दिन अक्षय दान दिया गया, इसलिये उसका नाम अक्षय तृतीया हुआ। आज इसे आखातीज भी कहते हैं।

## प्रश्न

१—भगवान ऋषभनाथ ने एक वर्ष तपस्या क्यों की ?

२—इस तपस्या का पारणा कहाँ और किसके हाथ से हुआ ?

३—अक्षय तृतीया कौन से महिने में आती है और वह अक्षय तृतीया क्यों कहलाती है ?

पाठ—३

# माया और ग्रन्थी

उनका नाम मरीची था। वे गृह-त्यागी और निर्ग्रन्थ थे। संसार के स्नेहपाश टूट ही गये थे, शिष्य बन्धन भी नहीं थे। अकेले ही साधना करते थे। साधक थे, लेकिन साधना अपूर्ण थी। साधना में शिथिलता थी इसका उनको अनुभव था। अपनी त्यागी वे स्वीकार करते थे, लेकिन उनकी वाणी में जादू था। यदि कोई उनके पास जाता तो वे ऐसी वाणी बागरते कि आगन्तुक वैराग्य के रंग में रंग जाता। कोई कोई तो ऐसा गहरा रंग जाता कि दीक्षा लेने को तत्पर हो जाता और कहता, माधव! मुझे दीक्षा दे दो। मरीची सरल वैरागी थे, वे अपनी कमजोरियों को जानते थे। इसलिये उसे भगवान ऋषभदेव के पास भेज देते, स्वयं किसी को दीक्षा नहीं देते। अपने अधूरे थे, वे दूसरों को अपने साथ रखकर अधूरा रहने देना नहीं चाहते थे। मैं कठोर वैराग्य जीवन पूरा नहीं पाल सकता तो क्या, दूसरा तो पूरा और सही पाले। इसीलिए मुमुक्षुओं में वैराग्य उत्पन्न कर वे उन्हें ठीक ठिकाने भेज देते थे। इस प्रकार उन्होंने अनेक आत्माओं का कल्याण किया।

समय बीता। विचारों ने पलटा खाया। मानसिक कमजोरी आई। एक दिन एक मुमुक्षु आया, नाम था कपिल।

उपदेश दिया। जादू सा काम कर गया। कपिल बोला—असार संसार छोड़ूँगा। सदा की भांति इसे भी भगवान ऋषभदेव के पास जाने को कहा। कपिल दूसरी धातु का आदमी था। पूछा—क्यों? भगवन्! ऐसा क्यों? मुझे ऋषभदेव के पास क्यों भेजते हैं? क्या आपके पास धर्म नहीं है? क्या आप में गुरु होने की योग्यता नहीं है? मुझे क्यों दूसरी जगह भेजते हैं? मुझे तो आपके उपदेश से ही वैराग्य उत्पन्न हुआ है। मैं आपका ही शिष्य होना चाहता हूं। मुझे आपमें कोई कमी नहीं दिखलाई देती। दूसरी जगह क्यों जाऊँ।

मन की दृढ़ता कम हो गई थी, इसलिए कपिल के तर्क की मरीची के अन्तर पर गहरी छाप पड़ी। विचारों का जोरदार आलोड़न हुआ। एक शिष्य लेने में क्या हानि है? अन्तर बोला—तुम निज में तो पूरी तरह वैराग्य जीवन नहीं पाल सकता है। तो दूसरे को क्यों ले डुबाता है। तुम्हारी जो कमजोरियां हैं, वे तुम्हारी संगति से कपिल में भी जाएगी। भेज उसको भगवान् ऋषभदेव के पास। उसका बेड़ा तो पार। विचारों ने पलटा खाया। थोड़ी बहुत त्रुटि से क्या होता है। तथा पुद्गल क्षीण पड़ गये है। सेवा चाकरी के लिए एक शिष्य चाहिए। धर्म तो मैं ही बता सकता हूँ, अनेकों को बताया भी है। धर्म पालन में कुछ कमी है। उससे क्या आता जाता है। प्रकृति के भद्रीक थे। इसलिए सरासर झूठ नहीं बोल सके। माया से काम लिया। कपिल को बोले—देखो। इसमें कोई

सन्देह नहीं कि भगवान ऋषभदेव के पास धर्म है। लेकिन मेरे पास धर्म है ही नहीं ऐसी बात भी नहीं है। मैं भी धर्म जानता हूँ। तुम मेरे पास रहकर धर्म पालन कर सकते हो, मेरे पास भी धर्म है। अन्त में कपिल को शिष्य बना लिया।

शिष्य मन्त्री लग गई। मन की माया बढ़ती गई। मोह और माया का चक्कर ऐसा पड़ा कि करोड़ों वर्ष के भव भ्रमण का फंदा गले पड़ गया।

## प्रश्न

१—मरीचि स्वयं दीक्षा क्यों नहीं देते थे?

२—कपिल ने मरीचि से क्या तर्क की?

३—कपिल के तर्क का मरीचि पर क्या असर पड़ा?

४—निम्नलिखित शब्दों के अर्थ बताओ—

स्नेहधारा, आग्रह, मुमुक्षा, भद्रीक, शिष्य मन्त्री।

पाठ ४

# दीपमालिका

विक्रम पूर्व ४७२-४७१ वर्ष भगवान महावीर का चातुर्मास राजा हस्तिपाल के विशेष आग्रह पर पावापुरी में हुआ था। भगवान का यह अन्तिम चातुर्मास था। चातुर्मास के तीन महीने तो पूरे बीत चुके, चौथा महीना करीब आधा बीतने वाला था।

कार्तिक बदी १४ के दिन भगवान ने चौविहार अनशन पचख लिया। भगवान ने लगातार १६ प्रहर तक धर्म देशना दी। इस धर्मोपदेश में भगवान ने उत्तराध्ययन के छत्तीस अध्ययन और विपाक के एक सौ दस अध्ययनों का वर्णन किया है।

भगवान की सतत देशना का लाभ उठानेवालों में काशी कौशल के नवमल्ली और नवलिच्छवी गणराज प्रमुख थे। कार्तिक बदी अमावस्या की अर्ध रात्रि के पश्चात् धर्मोपदेश करते-करते भगवान का निर्वाण हुआ। एक साथ ही समूची दुनिया में सन्नाटा छा गया। सबके दिल में खेद हुआ कि आज अन्तिम तीर्थंकर का निर्वाण हो गया। बस, इस युग में अब कोई तीर्थंकर नहीं होंगे।

भगवान का निर्वाण होते ही चहु ओर से देवता और इन्द्र अपने परिवार सहित चरम कल्याणक करने के लिए आए।

उनके विमानों के दिव्य रत्नों से अमावस्या की अन्धेरी रात जगमगा उठी। पावापुरी मे इतना दिव्य प्रकाश शायद सूर्य ने भी अभी तक न फैलाया हो। इधर राजा और प्रजा ने भी चरम कल्याणक उत्सव मनाने के दीप जलाये।

इस प्रकार रत्नों और दीपकों की प्रभा से मनाया हुआ चरमोत्सव, दीपमालिका के नाम से प्रसिद्ध हुआ। जैनों का इस ऐतिहासिक त्यौहार से इसलिए सम्बन्ध है कि आज के दिन भगवान महावीर मोक्ष पधारे थे।

## प्रश्न

१—भगवान महावीर का अंतिम चातुमास कहाँ था।

२—भगवान की निर्वाण तिथि कौन सी है?

३—भगवान ने अनशन में किन सूत्रों का उपदेश किया।

४—भगवान के निर्वाण होने के समय वहाँ कोई राजा थे या नहीं, अगर थे तो उनके नाम बताओ।

५—दीपमालिका का त्योहार क्यों चला?

पाठ ५

# तेरापंथकी मर्यादाएँ

राजेन्द्र—देवेन्द्र ! आज का वातावरण कितना कलुषित हो रहा है। घर-घर मे कलह, वडों की अवज्ञा, आपस मे दूषित बर्ताव, आपसी भेदभाव आदि-आदि बाते कितनी मजबूत हो चुकी है। गृहस्थ समाजों की ही क्या, करीब-करीब साधु समाजों की भी यही दशा है, जिन्होंने पौद्गलिक सुख, पूजा, प्रतिष्ठा, मान-सम्मान को ठुकरा कर एक मात्र आत्म साधना के लक्ष्य से ही दीक्षा ली है। आश्चर्य ! वे भी कलह के सिकजे मे फँसे हुए है। यह ऐसा क्यो हो रहा है देवेन्द्र !

देवेन्द्र—राजेन्द्र ! इसका असली कारण अव्यवस्था या दुर्व्यवस्था अथवा अनुशासन की कमी है। जिन समाजों मे अच्छी व्यवस्था है, कुशल अनुशासन है वह आज भी इस वातावरण से कोसों दूर है।

राजेन्द्र—तेरापन्थ साधु सस्था की बाते सुन कर तुम्हें आश्चय होगा ! मैं करीब ४-५ वर्षों से उनके सम्पर्क मे आया हूं। उनका सगठन, पारस्परिक विशुद्ध प्रेम, कुशल अनुशासन, वडो का सम्मान, सब मे भाईचारे का वर्त्ताव आदि आदि विलक्षण बातों की मुझ पर गहरी

छाप पड़ी है। उनकी प्रत्येक व्यवस्था ने मुझे मन्त्र मुग्ध बना दिया है। उनके दूरदर्शीय पूर्वाचार्यों की रची हुई नियमावली विलक्षण है। सुनो, मैं तुम्हें कई खास खास मर्यादाएँ बताता हूँ।

उनमें गण को बड़ा महत्व दिया गया है। गण को सुव्यवस्थित देखने के लिए एक आचार्य होते हैं। उनकी कुशल देख रेख में ही समूचे गण का संचालन होता है। आचार्य गण में से ही चुने जाते हैं। आचार्य का निर्वाचन पूर्ववर्ती आचार्य ही करते हैं। यह चुनाव इतना निष्पक्ष होता है कि इसमें किसी को सन्देह करने की गुंजायश तक नहीं रहती। आचार्य इस काम को अपने जीवन का सब से अधिक महत्वपूर्ण और अपने कौशल की कसौटी मानते हैं। प्रत्येक साधु-साध्वी एवं विशेष कर आचार्य गण के प्रति जिम्मेदार होते हैं। आचार्य का आदेश बिना किसी हिचकिचाहट के मान्य होता है। साधु साध्वियों का रहना, विहार करना, देश परदेश में धर्म प्रचार करना आदि सब आचार्य के आदेशानुसार होते हैं। रोगी साधुओं की सेवा करवाना, व्यवस्था भंग करने वाले को दण्ड देना व संघ से अलग करना आदि आदि सब आचार्य के प्रमुख कार्य हैं। दीक्षित करने के अधिकारी एकमात्र आचार्य होते हैं।

आचार्य की अनुमति के बिना कोई किसी को दीक्षा नहीं दे सकता। शिष्य भी सब एक आचार्य के होते हैं। कोई भी साधु या साध्वी, गण के किसी भी सदस्य की उतरती नहीं

कर सकता। अगर कोई किसी में गलती देखे तो उसका कर्त्तव्य हो जाता है कि वह उसको सावचेत कर दे और आचार्य को भी उसकी सूचना दे दे। किन्तु इसके सिवाय अगर वह और किसी को कह दे तो वह स्वयं दोषी ठहर जाता है और यह समझा जाता है कि वह उस साधु से दूसरों के मन फाँटना चाहता है।

साधुओं के दैनिक कार्य क्रमशः बटे हुए होते हैं। भिक्षा द्वारा प्राप्त भोजन का भी विभाग होता है। उनके जीवन का प्रत्येक पहलू सद्भावना एवं नियमों की अटूट शृङ्खलाओं से बँधा हुआ है। यही तो कारण है कि आज जैसे विषैले वातावरण के मध्य में रहते हुए भी वे उसकी काली छाया से बचे हुए हैं एवं अद्वितीय प्रतिष्ठा की प्राप्ति किये हुए हैं।

## प्रश्न

१—मर्यादायें क्यों बाँधी गई ?

२—तेरापन्थ का संचालन कौन करते हैं ?

३—आचार्य का निर्वाचन कौन करता है ?

४—गण के प्रति किनका उत्तरदायित्व होता है ?

५—आचार्य के मुख्य मुख्य कार्य बताओ।

६—क्या आचार्य की अनुमति बिना कोई साधु दीक्षा दे सकता है ?

७—किसी में त्रुटि देखी जावे तो क्या करना चाहिए ?

पाठ ६

# साधु की गोचरी के नियम

साधना करनेवाले को साधु कहते हैं। साधना शरीर बिना नहीं होती। शरीर निवाह के लिए आहार पानी की आवश्यकता होती है। आहार पानी के बिना शरीर अधिक दिन नहीं चल सकता। इसलिए शरीर निवाह के लिए आहार की आवश्यकता होती है, यह एक सामान्य बात है। साधु स्वय भोजन पकाते नहीं, यह विशेष बात है। इस पर से प्रश्न उठता है— साधु भोजन कहां से लाये और कैसे लाये ?

साधु स्वय भोजन नहीं पकाते, इसके पीछे अहिंसा की भावना है। इसी अहिंसा की साधना के लिए वे ऐसा भोजन भी स्वीकार नहीं करते जहां पहले या पीछे, स्पष्ट या अस्पष्ट साधु के लिए हिंसा होती है। इसे ध्यान मे रखते हुये भगवान महावीर ने साधु को ४२ दोष टालकर भिक्षा लेने का विधान किया है। इन ४२ दोषों को तीन भागों मे विभाजित किया गया है, यह एक अपेक्षा है। इसके अतिरिक्त और भी नियम है ? जिनमे स्पष्ट हिंसा है। उनका भी निषेध किया गया है। नियम नीचे दिये जाते है—

## हिंसा

(१) आधा कर्म—जो साधु को लक्ष्य कर भोजन तैयार किया गया हो, उसे साधु न ले।

(२) औद्देशिक—जो भोजन साधु विशेष और अन्य भिक्षुओं को लक्ष्य कर तैयार किया हुआ हो उसे साधु न ले।

(३) पूर्ति—जो शुद्ध हो याने साधु के निमित्त नहीं बना हो, लेकिन आधा कर्म का अंश उसमें मिल गया हो तो ऐसे आहार का भी साधु न ले।

(४) मिश्र—जो साधु, असाधु गृहस्थ आदि सभी के लिये भोजन तैयार किया हो ऐसे आहार को साधु न ले।

(५) स्थापित—जो साधु के निमित्त ही वस्तु स्थापित कर रखी हो। आवश्यकता वश न स्वयं काम में ले और न दूसरों को दे, ऐसा आहार व वस्त्रादि साधु न ले।

(६) प्राभृतिका—साधु के लिये अतिथि को आगे पीछे करके जिमाये और वह आहार साधु को दे तो साधु उसे न ले।

(७) प्रादुष्करण—अन्धकारमय स्थान में प्रकाश करके साधु को भिक्षा दे तो साधु उसे न ले। क्योंकि यहाँ अग्निकाय के जीवों की हिंसा होती है।

(८) क्रीत—साधु के निमित्त बाजार से खरीद और लाकर देवे तो साधु उसे न ले।

(९) प्रामित्य—उधार लाकर साधु को देवे तो साधु उसे न ले।

(१०) परिवर्तित—कोई वस्तु बदलाकर साधु को देवे तो साधु उसे न ले।

(११) अभ्याहृत—सन्मुख भिक्षा लाकर देवे तो साधु उसे न ले।

(१२) उद्भिन्न—बन्द किवाड को खोलकर साधु या कोई वस्तु देवे तो साधु उसे न ले।

(१३) मालापहृत—कोई वस्तु ऊंचे से उतारकर साधु को देवे तो साधु उसे न ले।

(१४) आच्छेद्य—कोई कमजोर से छीनकर देवे तो साधु उसे न ले।

(१५) अनिसृष्ट—साझे की वस्तु यदि एक व्यक्ति बिना साझेदार की आज्ञा के दे तो साधु उसे न ले।

(१६) अध्यवपूरक—भोजन बन रहा है उसमें साधु के निमित्त फिर और डालकर अधिक बनावे और उसे साधु को दे तो साधु उसे न ले।

(१३) क्रोध—क्रोध करके भिक्षा न ले।

(१४) मान—मान करके भिक्षा न ले।

(१५) माया—माया करके भिक्षा न ले।

(१६) लाभ—लोभ करके भिक्षा न ले।

(३३) शंकित—किसी वस्तु में साधु तथा दाता दोनों में से किसी के शंका हो तो वह वस्तु साधु न ले।

(३४) मुक्षित—सचित वस्तु से हाथ आलिप्त हो तो साधु उसे न ले।

(३५) निक्षिप्त—सचित ऊपर आहारादि रखा हो और उसे दे तो साधु उसे न ले।

(३६) पिहित—कोई वस्तु सचित वस्तु से ढकी हो और साधु को दे तो साधु उसे न ले।

(३७) संहृत—सचित वस्तु निकालकर दे तो उसे साधु न ले।

(३८) दायक—दाता अन्धा या पंगु हो, वह चल के दे तो साधु उसे न ले।

(३९) उन्मिश्र—सचित और अचित दोनों मिश्रित हों तो साधु उसे न ले।

(४०) अपरिणत—सचित का पूरा अचित न हुआ हो तो साधु उसे न ले।

(४१) लिप्त—तत्काल के लिए आगन पर खडा या चलता द तो साधु उसे न ले।

(४२) छर्दित—आहारादि ऊँचे से गिरता हुआ दे तो साधु न ले।

अपने आप में हीनवृति भी हिंसा है। कितने ऐसे नियम हैं—जिनमें हिंसा स्पष्ट है। कई ऐसे

नियम भी है, जिनमे हिंसा प्रतीत नहीं होती। लेकिन अन्ततोगत्वा हिंसा है। हीनवृत्ति मनुष्य को हिंसा की ओर बढाती है। अत अहिंसक के लिए यह उपादेय नहीं। इसलिए साधु हीनवृति से भिक्षा न ले। जैसे—

## हीनवृत्ति

(१७) धात्री—धाय की तरह बच्चों को खिला कर भिक्षा न ले।

(१८) दूति—दूत की तरह सवाद कह कर भिक्षा न ले।

(२०) आजीव—अपनी जाति बताकर भिक्षा न ले।

(२१) वनीपक—रक—भिखारी की तरह भिक्षा न ले।

(२७) सस्तव—दाता के गुण ग्राम कर भिक्षा न ले।

## भूतिकर्म

भूतिकर्म करने वालों को इष्ट का साधन करना पड़ता है, उसकी सिद्धि के लिए हिंसा करनी पडती है। अत साधु के लिए हेय है। जैसे—

(१६) निमित्त—लाभ और अलाभ बता कर भिक्षा न ले।

(२२) चिकित्सा—औषधि आदि व्यापार कर भिक्षा न ले।

(२८) विद्या—विद्या का प्रयोग कर भिक्षा न ले।

(२९) मत्र—मत्र करके भिक्षा न ले।

(३०) चूर्ण—चूर्ण, गोली आदि दवाई बताकर भिक्षा न ले।

(२१) योग—पाद-लेप करके भिक्षा न ले।

(३२) मूलकर्म—गर्भ गला कर भिक्षा न ले।

१—साधु भिक्षा के लिए प्रवेश करे, उस समय कोई कच्चे पानी से हाथ धोकर भिक्षा दे तो साधु उसके हाथ से भिक्षा स्वीकार न करे। क्योंकि उसने अप्काय के जीवों की हिंसा की है।

२—कोई शाक, फल, धान्यादि के स्पर्श करता हुआ अर्थात् इन पर रखी हुई वस्तुको दे तो उसे न ले। यहाँ पर वनस्पतिकाय के जीवों की विराधना है। दाता के स्पर्श से, हलन चलन से उनको कष्ट होता है।

३—साधु भिक्षा के लिए घर मे प्रवेश करे, उस समय तवे से रोटी आदि उतारे अथवा चूल्हे आदि मे लकडी आदि दे तो उसके हाथ से भिक्षा आदि न ले। यहाँ अग्निकाय के जीवों की विराधना स्पष्ट है।

४—अग्नि की ज्वाला से स्पर्श करती हुई वस्तु को कोई उतार कर दे तो साधु उसे न ले। यहाँ अग्निकाय के जीवों की हिंसा का प्रसग है।

५—कोई देय वस्तु को गिराता हुआ या वस्तु पर रज आदि हो, उसे फूंक से साफ कर देने तो साधु उसे नहीं ले। वायुकाय के जीवो की विराधना का प्रसग है।

६—जिसके मकान मे रहे, उसके शय्यातर का आहार न ले।

७—प्रतिदिन एक घर का आहार न ले।

८—राजा के निमित्त बना आहार न ले।

सयम के पोषण के लिए साधु आहार करता है। आहार की प्राप्ति यदि हिंसा से हो, तो वह साधु के लिए क्षम्य नहीं है। भगवान महावीर ने इसी अहिंसा की साधना के लिए प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप मे हिंसा हो या सम्भावना भी हो, तो उसे निषेध किया है। हिंसा और अहिंसा का विवेक ही उसकी साधना का अग है।

## प्रश्न

१ - साधु स्वय भोजन क्यों नहीं पकाते ?

२—साधु भोजन कहाँ से लाये और कैसे लाये ?

३—हीन-वृत्ति भिक्षा किसे कहते हैं ?

४—साधु के लिये किस प्रकार की भिक्षा हेय है ?

५—साधु की साधना का मुख्य अग क्या है ?

६—नीचे लिखे शब्दों के अर्थ बताओ—

औद्देशिक, प्रादुष्करण आच्छेद्य, उन्मिश्र, भूतिकर्म।

पाठ ७

# आशातना

विमल और निर्मल दोनों भाई साधुओं के दर्शन करने गये। विमल धर्म की असलियत को पहिचानता था। निर्मल अभी तक सात वर्ष का ही था। आगे एक कमरे के दरवाजे में एक कपडा तैनात किया हुआ था। निर्मल उसे लाघकर आगे जाने लगा, इतने में विमल बोला—"भाई! ठहरो। आगे मत जाओ।"

निर्मल – क्यों ?

विमल—यह कपडा साधुओं का है और यहाँ पर रुकावट के लिए डाला गया है। इसको लाँघने से आशातना लगती है।

निमल –आशातना किसे कहते हैं ?

विमल—गुरुओं से अनुचित बताव करने का नाम आशातना है।

निर्मल—तो क्या अन्दर जाना ही अनुचित है ?

विमल—नहीं, इसको लाँघकर जाना तो अनुचित ही है।

निर्मल—इसके सिवाय और भी कोई आशातना होती होगी ?

विमल—हाँ, बहुत है।

निर्मल—कौन कौन सी है ? मुझे बताओ।

विमल—साधुओं को पीठ दिखा कर बैठना, चिपककर बैठना,

बराबर बैठना, इसी तरह खड़ा रहना, बिना पूछे बीच में बोलना, व्याख्यान के बीच में बोलना, व्याख्यान के बीच में ही उठकर चला जाना आदि अनेक हैं। अरे भाई! कह कर मैं कितनी कह सकूँ। ये तो स्वयं ध्यान रखने की बातें हैं। जैसे देखो—आप वन्दना करते हैं तब साधुओं के चरणों को छूते हैं, पर उन पर हाथों की घसीट-सी लगा डालना भी आशातना है।

निर्मल—आशातना क्यों नहीं करनी चाहिए?

विमल—आशातना करने से पाप कर्म का बन्ध होता है, देखने में भी बुरा मालूम होता है।

निर्मल—ठीक है। परन्तु अगर भूल से कोई वक्त हो जाय तो क्या करना चाहिए?

विमल - अगर भूल से हो जाय तो विनीत भाव से क्षमा माँग लेनी चाहिए।

## प्रश्न

१—निर्मल जब कपड़े को लाकर आगे जाने लगा तो विमल ने उसे क्यों रोका?

२—आशातना किसे कहते हैं?

३—आशातना क्यों नहीं करनी चाहिये?

४—यदि भूल से आशातना हो जाय तो क्या करना चाहिये?

पाठ ८

# साधु की साधारण दिनचर्या

भगवान महावीर ने कहा है—"समय गोयम मा पमाये" तथा "काल काल समाचरे" इसका यही आशय है कि किंचित मात्र भी समय वृथा प्रमाद मे नष्ट नहीं करना चाहिए। जिस समय जो काम करना अनुकूल हो वैसा ही करना बुद्धि मत्ता है। जीवन मे समय बहुत ही महत्त्वपूर्ण एव अमूल्य रत्न समान माना जाता है। बीता हुआ समय लाख प्रयत्न करने पर भी पुन प्राप्त नहीं होता। अत समय का पूण सदुपयोग करना चाहिए। यही कारण है कि विवेकशील प्राणी अपने कार्यों को पूर्ण नियमितता से करते हैं। हमारे साधुओं की भी दिनचर्या बहुत ही व्यवस्थित रूप से है।

दिनचया का तात्पर्य है दैनिक नियमित प्रवृतियाँ। प्रत्येक मनुष्य जो अपने प्रत्येक दिन के कार्यक्रम को नियमित रूप से करता है वही उसकी दिनचया कहलाती है। हमारे साधु समाज की दिनचया अत्यन्त उच्च कोटि की है एव अनुसरणीय है।

प्रत्येक साधु प्रात करीब ४ बजे उठ जाते है एव चतुर्विंशति ( चउविस्थव ) करते हैं, तत्पश्चात् अपनी-अपनी रुचि के अनुसार ध्यान, स्वाध्याय, नवकार मत्र तथा लोगस्स आदि का चिन्तन करते हैं। सूर्योदय मे एक मुहूर्त ( ४८ मिनट ) पूर्व गुरु वन्दना करते हैं एव उसके बाद प्रात कालीन प्रतिक्रमण करते हैं।

जिसे सूर्योदय होने से पूर्व ही समाप्त कर लेते हैं। जब अंगुली का चक्र स्पष्ट दिखाई देने लगता है, तो वे अपने उपकरणों का प्रतिलेखन ( पडिलेहणा ) करते हैं।

इसके बाद वे पचमी आदि के लिये जल लाते हैं एवं शौचादि को चले जाते हैं। जब भी साधु किसी कार्य वश निवास स्थान से बाहर जाते हैं या मकान से बाहर निकलने के पूर्व "आवस्सही" का उच्चारण करते हैं। इसका अर्थ है कि मैं आवश्यक कार्य के लिए बाहर जाता हूँ एवं जब लौटकर वापिस स्थान में प्रवेश करते हैं तो "निस्सही" शब्द उच्चारित करते हैं अर्थात् मैं काम पूर्ण करके आ गया हूँ।

शौचादि से आने के बाद कुछ समय तक आसन, अध्ययन एवं चिन्तन करते हैं तथा उसके पश्चात् व्याख्यान देने वाले साधु व्याख्यान देते हैं बाकी साधु अध्ययन आदि कार्य करते रहते हैं। व्याख्यान के बाद साधु गोचरी ( भिक्षा ) के लिए चले जाते हैं। वे पहले से यह कभी नहीं कहते कि आज हम अमुक-अमुक घरों में भिक्षा लेंगे। जिधर इच्छा हुई चले गये। गोचरी का कार्य प्रायः घण्टे डेढ़ घण्टे में हो जाता है। मध्याह्न का आहार भी प्रायः साथ ही ले आते हैं। जो प्रमुख साधु होता है उसके आगे सारा आहार रख दिया जाता है, ( प्रमुख साधु किस-किस साधु को कितनी कितनी मात्रा में आहार चाहिए, पूछ लेता है ) गोचरी जाने वाला साधु अपने प्रमुख साधु से आज्ञा लेकर कितना आहार लाना है का आदेश ले गोचरी चला

जाता है एवं आवश्यकतानुसार प्रमुख साधु भी गोचरी के लिए जाता है। आहार आने के बाद प्रमुख साधु के सामने आहार निरीक्षण कराने का कारण है कि प्रमुख साधु यह देख लेता है कि बताई हुई मात्रा से कहीं अत्यधिक आहार तो नहीं आया है? इसके बाद आहार को प्रमुख साधु बाँट देता है, और साधु अपना-अपना आहार कर लेते हैं। आहार किये हुए स्थान को बाद में साधु स्वयं अच्छी तरह साफ कर लेते हैं।

विशेष परिस्थिति के अतिरिक्त कोई साधु दिन में नींद नहीं ले सकता। विश्राम की आवश्यकता होने पर थोड़ी देर बैठ कर विश्राम कर लेते है। दिनमें फिर लेखन, कला, चिन्तन, अध्ययन आदि का कार्य होता रहता है। श्रावक समाज को भी तत्त्व आदि का अध्ययन करवाते है एवं प्रवचन देते हैं। इस तरह करीब यह दिन का ३ घण्टे का समय व्यतीत होता है। चौथी प्रहर के बाद फिर वे अपने उपकरणों का प्रतिलेखन करते है।

अन्तिम समय में शौचादि एवं प्रातःकाल का बचा हुआ आहार करते है। इन कार्यों के करने के बाद यदि समय रह जाता है तो स्वेच्छानुसार अध्ययन आदि करने बैठ जाते है। सूर्यास्त होने के पूर्व ही अन्न जल का दूसरे दिन सूर्योदय तक के लिए त्याग कर देते है। रात्रि भोजन जैन साधु के लिए सर्वथा वर्जित है। मरणासन्न साधु भी इस नियम का पूर्ण रूपेण पालन करता है, तथा औषधि आदि का भी रात्रि में प्रयोग नहीं करता।

सूर्यास्त होने के बाद सामूहिक गुरु वन्दना होती है।

तत्पश्चात् साधु प्रतिक्रमण करते हैं, जो सूर्यास्त के ४८ मिनट के पूर्व ही समाप्त कर लिया जाता है। तत्पश्चात् ध्यान चिन्तन में लीन हो जाते हैं तथा सूर्यास्त के करीब सवा घण्टे बाद सामूहिक महावीर प्रार्थना करते हैं। प्रार्थना समाप्त होने के बाद कुछ समय तक सामूहिक ध्यान किया जाता है। उसके बाद एक प्रहर रात्रि तक साधु व्याख्यान, तत्वचर्चा, स्वाध्याय आदि करते हैं। तत्पश्चात ही वे शयन आदि का कार्य कर सकते हैं। एक प्रहर रात्रि से पहले कोई भी साधु बिना किसी विशेष कारण के नहीं सो सकता।

यह हुई साधुओं की दिनचर्या। कितनी नियमित, आकर्षक और सुन्दर यह दिनचर्या है। नियमित दिनचर्या होने से जीवन में नियमितता आती है। समय का सदुपयोग होता है। अतः हमें भी उनकी दिनचर्या से शिक्षा ग्रहण कर अपने अमूल्य समय का सदुपयोग कर जीवन को नियमित बनाना चाहिए।

## प्रश्न

१—सुबह पंचमी जाने के पूर्व साधु की क्या क्या दिनचर्यायें हैं?

२—आवस्सही और निस्सही किसे कहते हैं?

३—आहार लाने व उसके वितरण करने के क्या विधान हैं?

४—सामूहिक गुरु वन्दन किसे कहते हैं?

५—निम्न शब्दों के अर्थ बताओ—

स्वाध्याय, चतुर्विंशति, पलेवणा, उपकरण, लोगस्स।

पाठ—६

# क्षमा-याचना

सोहन—पिताजी। कल शाम को म आचार्यश्री की सेवा मे बैठा था। लगभग एक घण्टा रात होते ही साधु और श्रावकों के जत्थे के जत्थे इधर उधर घूमने लगे और घण्टों तक कतार सी बांधे लगातार घूमते रहे। उनमे से कई तो सिर झुकाते और कई उनका विनय स्वीकार करते थे। यह क्या था पिताजी ?

पिता—सोहन। कल समतखामणा का दिन था।

सोहन—समतखामणा क्या है पिताजी ?

पिता—आपस मे कोई बोल-चाल, मनमुटाव, वैर विरोध या अनुचित वर्ताव हो जावे तो उसके लिए साफ दिल से क्षमा मांगने को समतखामणा कहते हैं सोहन।

सोहन—क्या कल एक साथ ही सबके मनमुटाव हो गया ?

पिता—नहीं, कल तो पक्खी ( पक्ष का अन्तिम दिन ) थी न।

सोहन—पक्खी फिर क्या चीज है ?

पिता—बेटा। आम रीत तो यह है कि जब किसीके साथ चुभता वताव हो जावे तो उसी वक्त उससे क्षमा मांग ले और जो साधारणतया आपसी वताव मे भूल-चूक मे गल्तियां हो जाती है, उनकी विशुद्धि के लिए पन्द्रह

दिनों से क्षमा याचना करते हैं, उसका नाम पक्खी है सोहन। कल चैत्र पूर्णिमा थी न? इसीलिए सब आपस में खमतखामणा कर रहे थे। बेटा! इस तरह चार महीनों के बाद जो पक्खी आती है, वह चौमासी पक्खी कहलाती है। सम्वत्सरी का दिन इस काम के लिए सबसे बड़ा है।

सोहन—पिताजी! अगर कोई खमतखामणा न करे तो क्या होगा?

पिता—सोहन! खमतखामणा न करने से बड़ी हानि होती है। सम्वत्सरी के दिन भी कोई खमतखामणा न करे तो उसका सम्यक्त्व चला जाता है। इससे बढ़कर आत्मा का क्या नुकसान हो सकता है बेटा!

सोहन—पिताजी! कृपाकर बतलाइये कि 'खमतखामणा' कैसे करनी चाहिए?

पिता—जिनसे वैर-विरोध है, वे अगर सामने हों तो उनसे प्रत्यक्ष रूप से क्षमा माग लेनी चाहिए और यदि सामने न हों तो सात लाख पृथ्वीकाय का पाठ पढ़कर प्राणीमात्र से 'खमतखामणा' कर लेनी चाहिए।

सोहन—सात लाख पृथ्वीकाय, यह पाठ फिर कौनसा है?

पिता—लो सुना बेटा! सात लाख पृथ्वीकाय, सात लाख अप्काय, सात लाख तेजस्काय, सात लाख वायुकाय,

दश लाख प्रत्येक वनस्पतिकाय, चौदह लाख साधारण वनस्पतिकाय, दो लाख द्वीन्द्रिय, दो लाख त्रीन्द्रिय, दो लाख चतुरिन्द्रिय, चार लाख नारकीय, चार लाख देवता, चार लाख तिर्यञ्च पचेन्द्रिय, चौदह लाख मनुष्य की जाति। ( चौरासी लाख जीवयोनि से मैं बार-बार क्षमा-याचना करता हू )

सोहन—पिताजी। यह बात तो मुझे बहुत ही पसन्द आई है। इससे तो हम सबको बहुत ही लाभ पहुंच सकता है, हमारी एकता बहुत ऊंची उठ सकती है।

पिता—बेटा। लो, मैं तुम्हें एक उपाय और बताता हू। उसे सुबह और शाम दोनों वक्त याद कर लिया करो।

सोहन—जी हाँ, बतलाइये यह कौन सा है ?

पिता—बेटा। लो सुनो—

खामेमि सव्वजीवे,
सव्वे जीवा खमन्तु मे।
मित्तीमे सव्व भूएसु,
वेर मज्झ न केणइ॥

अर्थात्—मैं सब जीवों को क्षमा करता हूँ, वे मुझे क्षमा करें। मैं सबका मित्र हूँ, किसीसे भी मेरा वैर-विरोध नहीं है। बेटा। देखो, समतखामणा कितनी अच्छी चीज है। क्षमा माँगनेवाला क्षमा माँगता है और क्षमा करनेवाला उसकी गलतियों को माफ करता है।

सोहन—हाँ पिताजी। यह तो मैंने जान लिया कि खमतखामणा जैन-धर्म की खास चीज है।

## प्रश्न

१—खमतखामणा का अर्थ बताओ।

२—खमतखामणा कैसे करनी चाहिए?

३—सात लाख पृथ्वीकाय का पाठ सुनाओ।

४—"खामेमि सव्व जीव" का अर्थ बताओ।

५—सम्वत्सरी के दिन खमतखामणा न करने से क्या होता है?

६—क्या खमतखामणा मनमुटाव होने पर ही करना चाहिए?

७—इस पाठ से तुम्हें क्या शिक्षा मिलती है?

पाठ १०

# गाथापति कामदेव

चम्पा नामक नगरी मे कामदेव नामक गाथापति रहता था। उसके भद्रा नाम की भार्या थी। उसने छ हिरण्यकोटि निधानमे, छ वृद्धि—ब्याज मे और छ धन धान्यादि मे नियोजित थीं। उसके गायों के छ व्रज[1] थे।

एकबार श्रमण भगवान महावीर विहार करते करते चम्पा नगरी पधारे और वहां पूर्णभद्र चैत्य मे ठहरे। यह सुन कामदेव उनके दर्शनके लिए गया और वन्दन नमस्कार कर प्रवचन सुनने लगा। प्रवचन सुन, प्रसन्न हो, पांच अणुव्रत और सात शिक्षाव्रत मय गृहीधर्म स्वीकार किया। भगवानने विहार किया। श्रमणोपासक कामदेव श्रावकधर्म पालन करता और निर्ग्रन्थ साधुओंको भिक्षादि देता हुआ रहने लगा। इस प्रकार १४ वर्ष बीत गये। १५ व वर्ष मे कामदेव ने जेष्ठ पुत्र को घर भार सौंप, अपने ज्येष्ठ पुत्र, मित्र, ज्ञाति और सज्जनों की अनुमति ले, पौषधशाला मे जा, श्रमण भगवान महावीर से सुनी धर्मसाधना करने लगा।

एक दिन मध्यरात्रि के समय श्रमणोपासक कामदेव के पास एक मायावी मिथ्या दृष्टि देव एक बड भयानक पिशाच का रूप धारण कर आया। उसके हाथ मे एक बडी, अलसी के

१—एक व्रज दस हजार गायों का होता है।

पुष्प के समान काली धार के समान अत्यन्त तीक्ष्ण धारवाली तलवार थी। कामदेव के पास आ क्रोधित हो, कुपित हो, वह दाँतों को कटकटाते बोला—'हे अप्रार्थित-मृत्यु की प्रार्थना करनेवाले ! हे दुष्ट परिणाम और बुरे लक्षणवाले ! हे हीन पुण्य काली चौदश के दिन जन्मे ! हे लज्जा, श्री, धृति और कीर्ति रहित ! तू धर्म पुण्य स्वर्ग मोक्ष की इच्छा, कांक्षा और पिपासा वाला है, और इससे अपने शीलव्रत, गुणव्रत, विरमणव्रत, प्रत्याख्यान और पौषधोपवास को छोड़ता नहीं। परन्तु आज यदि अपने शीलव्रत आदि का परित्याग नहीं करेगा तो इस काली कराल तलवार द्वारा तेरे खण्ड-खण्ड कर डालूँगा और आर्तध्यान से पीड़ित हो तुझे अकाल में ही जीवन से हाथ धोना पड़ेगा।"

पिशाच के बार-बार ऐसा कहने पर भी कामदेव जरा भी भयभीत, त्रस्त, उद्वेलित, क्षुभित या चलित नहीं हुआ। वह निश्चल रह, चुपचाप धर्म ध्यान में मग्न रहा।

कामदेव श्रमणोपासक को इस तरह निर्भय और धर्मध्यान में मग्न देख, देव क्रोधित हो, तीन भृकुटी चढ़ा, तलवार से तीव्र प्रहार करने लगा। कामदेव ने उस विपुल असह्य वेदना को समभाव से—निर्मल परिणामों से सहन किया।

इस तरह चलित न कर सकने पर देव ने पिशाच रूप का त्याग कर एक दीर्घकाय दिव्य हाथी का रूप धारण किया। मदोन्मत्त मेघ की तरह गर्जना करता और वेग से

पवन को भी परास्त करता यह दिव्य हाथी कामदेव को भयभीत करने लगा, पर वह निर्भय ही रहा। यह देख देव ने गुस्से मे आ उसे सूड से पकड आकाश मे ऊचा उछाल तीक्ष्ण दन्तरूपी शूलों द्वारा उसे ग्रहण कर, नीचे पृथ्वी तल पर गिरा, तीन बार पैरों से रोंदा। पर इस तीव्र वेदना के अवसर पर भी कामदेव निश्चल ही रहा और धर्मध्यान से विचलित न हुआ।

इस उपाय से भी जब देव, कामदेव श्रमणोपासक को डिगा न सका, तब काले जहरी सर्प का रूप धारण कर वह तीव्र दश का भय दिखाने लगा, पर कामदेव तो भी निर्भय ही रहा। यह देख क्रोधित हो, शरीर पर सर-सर चढ, पूँछ से ग्रीवा के तीन आंटे लगा, तीक्ष्ण और विषव्याप्त दाढों द्वारा देव ने श्रमणोपासक कामदेव की छाती मे प्रहार किया किन्तु उसने यह वेदना भी प्रसन्न मन से सहन की और धर्मध्यान मे पूर्ववत् लीन रहा।

इस उपाय से भी कामदेव को निर्ग्रन्थ प्रवचन से चलित करनेसे असमर्थ होने पर देव ने सर्प के रूप का त्याग कर दिव्य देव का रूप धारण किया। दशों दिशाओं को अपने प्रकाश से प्रकाशित करता, प्रसन्न करता, वह देव आकाश मे स्थित हो, कामदेव श्रमणोपासक से बोला—

"हे कामदेव श्रमणोपासक! तू धन्य है, पुण्यशाली है, कृतार्थ और कृतलक्षण है। हे देवानुप्रिय! तूने मनुष्यजन्म और जीवन

का मुख पाया है, जो कि तू निर्ग्रन्थ-प्रवचन में इस प्रकार प्रतिपत्ति—श्रद्धाप्राप्त और सुनिर्णीत—दृढ़ है।

"हे देवानुप्रिय! देवेन्द्र—देवराज शक्र, शक्र नामक सिंहासन पर बैठा हुआ था। चौरासी हजार सामानिक और अन्य अनेक देव-देवियाँ उसे घेरे हुए थीं। उस समय शक्र सबके बीच बैठा इस प्रकार बोला—"हे देवानुप्रिय! जम्बुद्वीप नामक द्वीप के भरत क्षेत्र की चम्पानगरी में कामदेव श्रमणोपासक पौषधशाला में पौषध करता ब्रह्मचर्यपूर्वक, दर्भ के संथारे पर श्रमण भगवान महावीर के पास से प्राप्त की धर्म-प्रज्ञप्ति को पालन करता रहता है। उसे देव, दानव, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किंपुरुष कोई भी निर्ग्रन्थ-प्रवचन से चलायमान करने, क्षुभित करने, विपरिणाम करने में समर्थ नहीं हो सकता।" देवराज शक्र की इस बात में विश्वास नहीं करता हुआ मैं शीघ्र यहाँ आया। हे देवानुप्रिय! इन्द्र के कथनानुसार तुझे ऋद्धि, धृति, यश, बल, पुरुषकार-पराक्रम सब प्राप्त हैं। मैंने तेरी ये सब ऋद्धियाँ प्रत्यक्ष देखी हैं और जानी हैं। हे देवानुप्रिय! मैं अपने अपराध की क्षमा माँगता हूँ। तुम मुझे क्षमा करो। हे देवानुप्रिय! तुम क्षमा करने योग्य हो, मैं पुनः ऐसा अपराध नहीं करूँगा।"

ऐसा कह पैरों पर गिर हाथ जोड़ देव बार बार क्षमा माँगने लगा और फिर जिस दिशा से आया था उसी दिशा की ओर चला गया। कामदेव श्रमणोपासक ने अपने को उपसर्ग-रहित जान प्रतिमा—कायोत्सर्ग-पूरा किया।

श्रमण भगवान महावीर जनपद में विहार करते-करते चम्पा नगरी पधारे। उनके आने की बात सुनकर कामदेव के मन में यह सङ्कल्प हुआ—"श्रमण भगवान महावीर को वन्दन-नमस्कार कर, वापिस आ, पौषध पारना—पूरा करना अच्छा है।' ऐसा विचार, श्रमण भगवान महावीर के पास जा उसने वन्दन-नमस्कार और पर्युपासना की। श्रमण भगवान् महावीर ने कामदेव और इस्ट्री महा महती परिषद को धर्मोपदेश दिया।

धर्मोपदेश समाप्त होने पर श्रमण भगवान महावीर कामदेव श्रमणोपासक को सम्बोधन कर बोले—'हे कामदेव श्रमणोपासक! मध्यरात्रि के समय तेरे पास कोई एक देव प्रगट हुआ था। विकराल पिशाच रूप बना, क्रुद्ध हो, तीक्ष्ण तलवार हाथ में ले, वह तुझ से बोला—'हे कामदेव! अगर तू ग्रहण किये हुए शीलव्रत, गुणव्रत और प्रत्याख्यान आदि का त्याग नहीं करेगा तो इस तलवार द्वारा तेरे टुकड़े टुकड़े कर डालूँगा।" उस देव के ऐसा कहने पर भी तू निर्भय रहा। इस तरह तीन उपसर्ग देने के बाद वह देव वापिस गया। हे कामदेव! क्या यह अर्थ ठीक है?"

कामदेव ने कहा। "हाँ भगवन्।"

तब श्रमण भगवान महावीर ने निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियों से कहा—"हे आर्यो। गृहवास में रहते गृहस्थ श्रमणोपासक यदि देव, मनुष्य और पशु पक्षी कृत उपसर्गों को समभाव और शान्ति से सह सकता है तो हे आर्यो। द्वादशाङ्गरूप गणिपिटक

का अध्ययन करनेवाले, श्रमणनिर्ग्रन्थ, देव, मनुष्य और पशु-पक्षी कृत उपसर्गों को सहन करने में विशेष समर्थ—योग्य होने चाहिएँ।"

वहां उपस्थित श्रमण निग्रन्थों और निर्ग्रन्थियों ने श्रमण भगवान महावीर के इस अर्थ को 'तहत्' कह—'ठीक' कह स्वीकार किया।

## प्रश्न

१—पिशाच रूपी देव ने कामदेव से क्या कहा?

२—कामदेव को धर्म ध्यान से विचलित करने के लिए पिशाच ने क्या क्या उपाय किये?

३—भगवान ने निग्रन्थ निर्ग्रन्थियों को क्या कहा?

४—नीचे लिखे शब्दों के अर्थ बताओ—

अप्राथित, प्रत्याख्यान, प्रतिपत्ति, गणिपिटक, तहत्।

———

## पाठ ११

# धर्म-स्थान

कमल हर रोज धर्मस्थान—साधुओं के स्थान पर जाया करता था। एक दिन उसके पिता ने सोचा कि यह दिन में दो चार दफा साधुओं के यहाँ जाता है तो कुछ समझ कर आता है या योंही चक्कर काटता है, मुझे इसकी निगह करनी चाहिए। दोपहर के वक्त पिता और पुत्र दोनों बैठे हुए थे। कमल की आँखें बार-बार सामने दीवाल पर लटकती हुई घड़ी की सुई पर टिकी थी। पिता ने कहा—पुत्र! क्या वहाँ जानेवाले हो? हाँ पिताजी। साधुओं की सेवा में जाने का समय करीबन होनेवाला है। पिता ने कहा—पुत्र! वहाँ बार २ किस लिए जाते हो?

पुत्र—पिताजी! वहाँ जाने का उद्देश्य क्या आपसे छिपा है? वहाँ तो वे ही जाते हैं, जिन्हें कुछ न कुछ आत्म-ज्ञान हो चुका है। वहाँ जितना जाऊं उतना ही थोड़ा है। आत्मा एक ऐसा गूढ़ तत्व है, जिसका सहज पता तक नहीं चलता। उसके असली स्वरूप तक पहुँचने में न जाने अभी और कितने २ प्रयास करने होंगे?

पिता—वहाँ जाकर कुछ गप शप भी लड़ाते होंगे ?

पुत्र—नहीं, पिताजी मैं सच कहता हूं। मैं और मेरे साथी सब वहाँ जिस उद्देश्य से जाते हैं, उसी उद्देश्य को सफल करने में लग जाते हैं। हम एक क्षण भी निष्फल नहीं करते। हम अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह आदि व्रतों के प्रत्येक पहलू को तर्क की कसौटी पर कसते है, साधुओं से पृच्छताछ करते हैं और उसको जीवन में उतारने का क्रम सोचते है। वह स्थान हमारे लिए जिज्ञासा का घर है। उस शान्त वातावरण में जाते ही हमारे सामने ये प्रश्न नाच उठते है कि हम कौन है ? कहाँ से आये है और कहाँ जायेंगे ? निनी चीज क्या है ? हम किस ओर जा रहे हैं ? हमारा लक्ष्य क्या होना चाहिए ? हम अपने आपको क्यों नहीं पहचानते ? अपना स्वरूप जानने में कौन बाधा डाल रहा है ? बाधाओं को दूर हटाने का कौन सा रास्ता है ? यह दुनिया क्या है ? प्राणी-मात्र में इतना अन्तर कैसे ? आदि ? ऐसे प्रश्न हमारे सामने है, जिनको सुलझाने के लिये हमें समूचा जीवन लगाने की आवश्यकता है। पिताजी ! हम वहाँ निठल्ले नहीं रहते। बहुत सी बात ऐसी हैं जो तर्क से नहीं, किन्तु अनुभव से उनका अभ्यास करते है और

"समय गोयम् मा पमायए" की जो शिक्षा मिली है उस पर हम पूर्ण अमल करते हैं।

अपने प्रिय पुत्र की तत्वभरी बातें सुनकर पिता अवाक्-सा रह गया और प्रसन्नता से बोला—अच्छा बेटा। खूब जाया करो और इसी तरह समय को सफल बनाते हुए साधु-सेवा का लाभ उठाया करो।

## प्रश्न

१—धर्मस्थान में जाने का उद्देश्य क्या है?

२—धर्मस्थान में जाने पर दिल में क्या क्या प्रश्न उठते हैं?

३—वहाँ पर क्या-क्या करना चाहिए?

पाठ १२

# सामायिक : एक विवेचन

## सामायिक का प्रचलन

सामायिक का जैन समाज में इतना प्रचलन है कि यथा-यथा इससे अनजान नहीं। प्राय प्रत्येक जैन सामायिक करता है। कई जैन बन्धु तो दिन का अधिकांश भाग सामायिक-आराधना में ही व्यतीत करते हैं। प्रतिदिन कम से कम एक सामायिक तो हर श्रावक प्राय करता ही है। जो प्रतिदिन नहीं करते, वे पर्युषण, सम्वत्सरी प्रभृति पर्व दिनों पर तो सामायिक अवश्य करते हैं। पर खेद इस बात का है कि जहाँ जन-परम्परा के साथ सामायिक इतनी निकटता से जुड़ी हुई है, इतना व्यापक प्रचलन इसका है, वहाँ विरले ही श्रावक मिलेंगे, जिन्हें इसके सम्बन्ध में अपेक्षित तात्त्विक जानकारी हो। मैं बहुधा साथियों से बातचीत के बीच इसकी टोह करता रहा हूँ, उनसे पूछताछ करता रहा हूँ। पर सखेद लिखना पड़ता है कि उनसे उचित जानकारी पूर्ण उत्तर मुझे नहीं मिला। यह मेरे मन में खटका, अप्रिय लगा। यों महसूस हुआ कि वे इस ओर कम जागरूक है। यही वह कारण है, जिसने मुझे सामायिक पर अपने विचार प्रस्तुत करने को प्रेरित किया।

## सामायिक के भेद

सामायिक सम-भाव प्रतिष्ठा की साधना है, जीवन में समता लाने का उपक्रम है, असत् निरोध का पथ है। उसके दो भेद हैं—सर्व सामायिक एवं देश-सामायिक। सर्व सामायिक का अर्थ है—जीवन भर के लिए सर्व सावद्य योग का परित्याग। सर्व सामायिक साधु-जीवन का पर्याय है। देश सामायिक का अर्थ है—समय-विशेष के लिए अपवाद के साथ सावद्य योग का परित्याग। यह गृहस्थ जीवन की साधना का अंग है, जो प्रस्तुत लेख का विषय है।

## सामायिक और भगवन्-आज्ञा

सामायिक के पाठ का पहला पद है—"करेमि भन्ते सामाइयं" अर्थात् भगवन्। मैं सामायिक करता हूँ। इस पद का एक विशेष आशय है, जो जैन शासन की परम्परा को प्रकट करता है। जैन सिद्धान्त में भगवान की आज्ञा में धर्म है, आज्ञा के बाहर नहीं अर्थात् भगवान ने जैसा करने का उपदेश निर्देश किया है, वही धर्म-आराधना का पथ है, उससे विपरीत नहीं। जैन धर्म की आज्ञा प्रधानता का ही यह परिणाम है कि साधक चाहे ऊंचे से ऊँचा त्याग तपस्या मूलक आचरण करने को उद्यत हो पर उसे उसके लिए गुरु की आज्ञा लेना आवश्यक होता है। आज्ञा के बिना वह उसे नहीं कर सकता, यह सदा से पद्धति रही है। प्रस्तुत इस पद में सामायिक के लिए भगवान

से आज्ञा ली गई है। भगवान का शाब्दिक अर्थ है ज्ञानवान्। यहाँ भगवान् शब्द से देव एवं गुरु का ग्रहण है।

## सामायिक और सावद्य योग-प्रत्याख्यान

पाठ का आगे का पद है—"सावज्जं जोगं पच्चक्खामि"। साधक कहता है—मैं सावद्य योग का प्रत्याख्यान—त्याग करता हूँ—पूर्ण रूप में नहीं, अपूर्ण रूप में। पूर्णत त्याग करने का मेरा सामर्थ्य नहीं है, इसलिए देशत - अशत सावद्य योगका त्याग करता हूँ। ऐसा वह भगवत् आज्ञा, भगवत् साक्षी से करने को तत्पर होता है।

जिस क्रिया से पाप का बन्ध होता है, उसे सावद्य कहते हैं अर्थात् पापकारी प्रवृत्तियाँ सावद्य कही जाती हैं। यहाँ यह प्रश्न उपस्थित होता है कि जब सावद्य—पाप का बन्ध करने वाली क्रियाओं का उल्लेख है, तब साथ में 'योग' शब्द को जोड़ने की क्या अपेक्षा है।

'योग' शब्द को साथ जोड़ने का एक विशेष आशय है। जैन-दर्शन में पापकारी प्रवृत्तियों को पाँच भागों में बाँटा है—मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय और अशुभ योग। ध्यान रहे सामायिक करते समय व्यक्ति केवल अशुभ योग का ही त्याग करता है, अन्य सावद्य प्रवृत्तियों का नहीं। इसलिए 'सावद्य के साथ 'योग' शब्द जोड़ा जाना आवश्यक रहा। तब क्या उक्त चारों पाप प्रवृत्तियाँ उसके चालू रहती हैं? यह प्रश्न होना

स्वाभाविक है। उत्तर स्पष्ट है—यदि सामायिक करने वाला श्रावक है तो उसके मिथ्यात्व—विपरीत तत्त्व, श्रद्धा—देव, गुरु एवं धर्म के सम्बन्ध में विपरीत मान्यता का त्याग पहले से ही है। अव्रत का आंशिक त्याग भी उसके है ही क्योंकि श्रावकपन विरति-सापेक्ष है। अव्रत का कुछ अंश उसके सामायिक करते समय और रुक जाता है। यदि वह श्रावक नहीं है तो सामायिक करते समय भी उसके उक्त चारों सावद्य प्रवृत्तियाँ चालू रहती हैं। प्रमाद और कषाय का त्याग श्रावकपन में नहीं होता। साधु दशा में—छठे गुण स्थान से ऊपर प्रमाद का तथा दशवें गुण-स्थान से ऊपर कषाय का त्याग होता है।

## भोगोतिरिक्त चार आश्रव—पापागम द्वार : एक दृष्टि

योग के अतिरिक्त पहले चार आश्रव—मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय आत्मा की आभ्यान्तरिक सूक्ष्म कलुष प्रवृत्तियाँ हैं। जिन जिन कर्मों के उदय से आत्मा में संचरित होती है, आत्मा से उन-उन कर्मों के अलग होने से ही ये मिटती हैं। यह अन्तर्तम में होने वाली प्रक्रिया है। इसकी बाह्य अनुभूति तो योग का ही एक प्रकार है। उसी का त्याग किया जाता है। उदाहरणार्थ—एक व्यक्ति सम्यक्त्व ग्रहण करता है, गुरु धारणा करता है। वह कुदेव को देव, कुगुरु को गुरु और अधर्म को धर्म मानने का त्याग करता है। ऐसा करते हम उसे देखते हैं और व्यवहार-दृष्टि से उसे सम्यक्त्वी कहते हैं पर यहाँ यदि बारीकी के साथ तात्त्विक विवेचन में जाएँ तो पायेंगे—वह जो त्याग करता है

यह योग का त्याग है। मिथ्यात्व का त्याग—निरोध—रुकावट तो कर्मों के क्षायिक, औपशमिक या क्षायोपशमिक भाव पर ही निर्भर है। इसलिए नैश्चयिक दृष्टि से हम किसी के लिये यह नहीं कह सकते हैं कि वह सम्यक्त्वी है ही, क्योंकि हमें यह प्रत्यक्ष अनुभूति नहीं कि उसके दर्शन-मोहनीय कर्म का क्षय, उपशम या क्षयोपशम हुआ है या नहीं। उसने योग रूप में मिथ्यात्व का त्याग किया है, इसलिये व्यवहारतः उसे सम्यक्त्वी कहा जाता है।

अव्रत के सम्बन्ध में भी यही बात समझनी चाहिये। जैसे साधु सामायिक चारित्र ग्रहण करता है। वह प्रत्यक्षरूपेण सर्व सावद्य प्रवृत्तियों का त्याग करता है, तदनुसार वह पालन भी करता है। आचार में भी उसमें कोई विपरीतता नहीं है पर तत्त्वतः साधुत्व—सर्व विरतिभाव उसे सम्प्राप्त है ऐसा निश्चय-दृष्टि से नहीं कहा जा सकता। नैश्चयिक साधुत्व विरति-निरोधमूलक कर्म प्रवाह के रुकने पर ही सम्भव होता है। यह हुआ या नहीं इस की साक्षात् प्रतीति नहीं हो पाती।

इसीलिये आचार्य भिक्षु ने मिथ्यात्व एवं अव्रत के प्रत्याख्यान का जो उल्लेख किया है, वह व्यवहार नय की अपेक्षा से है, निश्चय नय से नहीं।

## सर्व विशेषण का वर्जन : एक विशेष आशय

साधु सामायिक का पाठ करते समय "सव्वं सावज्जं जोगं पच्चक्खामि"—ऐसा उच्चारण करता है। श्रावक

विशेषण को छोड़कर बोलता है। साधु का सावद्य—त्याग तीन योग—मन, वचन, शरीर और तीन करण—कृत कारित, अनुमोदित से है। श्रावक का तीन योग—मन, वचन और शरीर तथा दो करण—कृत, कारित से है। त्याग का यह तारतम्य, यह अन्तर 'सर्व' विशेषण के जोड़ जाने और न जोड़े जाने का हेतु नहीं है। क्योंकि श्रावक भी मन, वचन, शरीर और कृत, कारित, अनुमोदित—तीन योग तीन करण से त्याग कर सकता है फिर भी उसका वह त्याग सर्व सावद्य त्याग नहीं कहा जा सकता है। यहाँ तात्पर्य यह है कि साधु के जो सावद्य का त्याग है, वह प्रत्येक करण एवं योगमें सर्व-सावद्य त्याग है, जैसे सर्व सावद्य कार्य नहीं करूँगा मन से, सर्व सावद्य कार्य नहीं करूँगा वचन से सर्व सावद्य कार्य नहीं करूँगा शरीर से आदि इसी तरह अन्य विकल्प समझना चाहिए। अभिप्राय यह है कि साधु की इस त्याग परम्परा में कोई आगार—अपवाद नहीं है और श्रावक की त्याग प्रक्रिया में विविध त्रिविध—त्रिकरण त्रियोग मूलक प्रत्याख्यान करने के बावजूद भी आगार रहता है। यहाँ श्रावकके लिए केवल अनुमोदन रूप पाप-कार्य करने का आगार नहीं है, कृत कारित—करने और कराने का भी आगार है। आगार के अनुरूप कार्य करने से सामायिक भंग नहीं होती।

अब यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि श्रावक ने जब पाठोच्चारण किया, तब आगार रखा ही कहाँ है? हाँ, यह सही है। यहाँ स्पष्ट रूप में शब्दश आगार नहीं जोड़े हैं पर वे साम्र-

दायिक परम्परागत व्यवहार के आधार पर सहज ही जुड़ जाते हैं। उदाहरणार्थ जैसे—थली का व्यक्ति हरी वनस्पति खाने का त्याग करता है। वह जानता है कि अचार, मुरब्बा आदि खाने से उसका त्याग खण्डित नहीं होता। यद्यपि अचार एवं मुरब्बा भी हरी के अन्तर्गत हैं पर त्याग करनेवाले की सहज मानसिक धारणा है कि वह इनके अपवाद के साथ त्याग कर रहा है। इसलिए उसका त्याग भग नहीं होता। वही साग उबली वनस्पति खाने के सम्बन्ध मे यह धारणा रखता है कि उससे त्याग-भग होता है।

एक दूसरा उदाहरण लीजिये—हरियाना ( जिला हिसार ) का व्यक्ति हरी का त्याग करता है, वह साग—उबली वनस्पति खाने मे भी अपने त्याग का भग नहीं समझता। वह केवल कच्ची हरी वनस्पति न खाने तक ही अपने त्याग को सीमित मानता है। उसकी मनोनिष्ठा, मानसिक धारणा उसी प्रकार की है।

यद्यपि दोनों व्यक्तियों ने एक ही प्रकार का त्याग किया है पर उनके परिपालन मे अन्तर है फिर भी अपने अपने प्रदेश मे प्रचलित परम्परा के अनुसार भिन्न रूप में पालन करते हुए भी वे त्याग के आराधक है। कहने का आशय यह है कि आगारों का उच्चारण न करने पर भी प्रवृत्यानुसार सहज ही आगार रह जाते हैं। उसी प्रकार जैसा कि पहले कहा गया है, सामायिक मे भी सामाजिक प्रवृत्ति व परम्परा के

आगार रह जाते है। यह सागार त्याग है, यह सामायिक के पाठ से ही स्पष्ट है, जहाँ सर्व शब्द का वर्जन है।

## साधना मे जागरूकता

साधक को सामायिक मे अधिकाधिक जागरूक और आत्मस्थ रहने का प्रयास करना चाहिये। स्वाध्याय, चिन्तन सत्साहित्यवाचन, तत्त्वचर्चा आदि मे लगे रहने से मनमे स्थिरता आती है, आत्मा समभाव प्रतिष्ठा की ओर अग्रसर होती है। कहने का तात्पर्य यह है कि जीवन अधिकाधिक अहिंसा और अपरिग्रह आदि से जुड़ा रहे, यह भावना और यत्न साधक का होना चाहिए। जो आवश्यक उपकरण वह रखता है, वहाँ भी जागरूकता बरतने की अपेक्षा है। वे ऐसे नहीं होने चाहिए, जिसका प्रतिलेखन अच्छी तरह न हो सके। उदाहरणार्थ—कहीं कहीं स्त्री समाज मे जो दुहरी सिलाई के वस्त्रों का उपयोग होता है, वे (वस्त्र) अच्छी तरह देखे नहीं जा सकते, उनका प्रतिलेखन यथावत् हो नहीं सकता। ऐसी स्थिति मे सामायिक, पौषध के अतिचार कैसे टाले जा सकते है? यह विशेष ध्यान देने और विचारने योग्य विषय है। आशा है, उन-उन क्षेत्रों के भाई बहिन इसपर गम्भीरता से सोचेंगे।

## सामायिक का काल-मान

सामायिक का काल-मान एक मुहूर्त का है। उससे कम या अधिक समय के लिये जो सामायिकानुमारी त्याग किया जाता

है, यह श्रावक के दशवें देशावकाशिक व्रत में आ जाता है। सामायिक श्रावक का नौवां व्रत है। वह काल परिमाण से सम्बद्ध है। पाठ का "जाव नियम मुहुत्तमेगं" पद इसी आशय का द्योतक है। अर्थात् जितने समय के लिये—मुहूर्त भर के लिए मैंने जो नियम लिया है, तदनुसार मैं सामायिक व्रत की पर्युपासना करता हूँ।

## त्याग की विधि

आगे प्रत्याख्यान के स्पष्टीकरण या विधि निर्देशन के रूप में पाठ आता है—"दुविहं तिविहेणं न करेमि न कारवेमि मणसा वयसा कायसा" अर्थात् सावद्य कार्य नहीं करूँगा मन से, नहीं करूँगा वचन से, नहीं करूंगा शरीर से, नहीं कराऊँगा मन से, नहीं कराऊँगा वचन से नहीं कराऊँगा शरीर से—इस प्रकार ६ भंगों के साथ साधक प्रत्याख्यान का उद्घोषण करता है पर यह ध्यान देने की बात है कि त्याग का परिपालक आठ भंगों से किया जाता है अर्थात् उक्त प्रकारों के साथ नहीं अनुमोदूंगा शरीर से, नहीं अनुमोदूंगा वचन से—यह भी जुड़ा रहता है, केवल मन से अनुमोदन न करने का यहाँ परिहार है। इसलिए आठ भंगों से यदि कोई त्याग करना चाहे तो इसमें कोई बाधा नहीं आती। प्रचलित परम्परा छ भंगों से त्याग करने की है।

## पूर्वाचरित अमत् कर्मों का परिशोधन

सामायिक आत्मशुद्धि, आत्म ऋजुता का साधन है। यह जीवन में समता लाता है। जीवन उससे यथावत् ओत-प्रोत

और सबलित बने, इसके लिए यह अपेक्षित होता है कि साधक आत्मावलोकन करे, अपने द्वारा आचरित असत् कार्यों के लिए पश्चात्ताप करे। इससे आत्मा में हलकापन आता है। सामायिक पाठका अन्तिम भाग इस भावना का प्रतीक है। पाठ की शब्दावली "तस्स भन्ते। पडिक्कमामि, निंदामि, गरिहामि अप्पाण वोसिरामि" का आशय है—भगवन्! मैं असामायिक दशा में सावद्य प्रवृत्तियाँ करता रहा हूँ, उनसे निवृत्त होता हूँ, पूर्वाचरित् सावद्य प्रवृत्तियों की आत्म साक्षी से निन्दा करता हूँ, गुरु-साक्षी से गर्हा करता हूं, पापमय आत्मा का व्युत्सृजन करता हूँ—पापकारी आत्म प्रवृत्तियों से दूर होता हूँ।

यह पाठ आत्मशुद्धि के राहगीरों के लिए एक प्रकाश स्तंभ है। साधक अपने जीवन को टटोलता है, अपने आपको झकझोरता है, अपने द्वारा किये गये पापाचरण के प्रति उसे खेद होता है वह उसे बुरा मानता है, उनसे दूर रहने की ठानता है। आत्म-बल धर्माराधन की निष्ठा और अध्यात्मवृत्ति जगाने में वास्तव में यह पाठ बहुत बड़ा प्रेरक है, यदि इसे यथार्थ रूप में समझते हुए आत्म-चिंतन किया जाए।

## सामायिक का सार्वजनीन प्रयोग

प्रश्न उठता है, सामायिक का अधिकारी कौन? क्या श्रावक और सम्यक्त्वी ही इसके अधिकारी हैं? बात ऐसी नहीं है। सामायिक जैसा कि उसके पाठ की शब्दावली से स्पष्ट है,

सावद्य—सपाप-योग-मानसिक, वाचिक और कायिक प्रवृत्तियों के त्याग के साथ समत्व-साधना का उपक्रम है। जैसा कि आरम्भ में बताया गया है, तत्वत वहाँ सावद्य योग का त्याग है, अन्य पापमयी प्रवृत्तियों का नहीं, जो कर्म के क्षय, उपशम और क्षयोपशम पर आधारित रहता है। इसलिए इसके आचरण और परिपालन में सम्यक्त्वी असम्यक्त्वी, श्रावक अश्रावक की कोई भेद रेखा नहीं। हाँ इतना अवश्य है, व्रत श्रावक के ही होता है, त्यागानुमोदी असत् कर्म निरोध मनके।

आशा है, साधक सामायिक साधना का जीवन में यथावत् समावेश कर आत्म-साक्षात्कार, आत्म शुद्धि और अन्तर-जागृति के पथपर अग्रसर होंगे।

## प्रश्न

१—भगवान की आज्ञा क्यों ली जाती है?

२—चार आश्रवों का त्याग क्यों नहीं हो सकता?

३—सामायिक का अधिकारी कौन है?

पाठ १३

# छात्र-शिक्षा

विद्यार्थी जीवन निर्माण का प्रथम सोपान है। भावी जीवन रेखा का आद्य बिन्दु है। विद्यार्थी जीवन के बाद ही मनुष्य अपने भावी जीवन यापन का मार्ग निर्धारित करता है। इस दृष्टि से विद्यार्थी देश की अमूल्य निधि है। छात्रावस्था जीवन-निर्माण की उर्वरा भूमि है। इसमें वपन किया गया बीज शतशाखी के रूप में फलित होता है। विद्यार्थी का जीवन योगी का जीवन है। जैसे योगी साधना काल में एक लक्ष्य ध्यानस्थ, वाग् संयमी और गुरु के अधीन रहता है। वैसे ही विद्यार्थी भी अध्ययन काल में इनका पालन करे। विद्या साधन की सफलता के लिए ये अत्यावश्यक है। विद्या उपार्जन का लक्ष्य अक्षर ज्ञान, उपाधि ग्रहण और सरलता से आजीविका चलाना नहीं है। इसका उद्देश्य है—(१) ज्ञानी बनना (२) संयमी बनना (३) अपनी वृत्तियों को स्थिर करना और (४) असंयत को संयत बनाना। इन चार उद्देश्यों में आज एक भी उद्देश्य की पूर्ति नहीं हो रही है। ज्ञानी बनने की अपेक्षा परीक्षा में उत्तीर्ण होना ही प्रधान लक्ष्य बन गया है। वाग् संयम और दृष्टि-संयम तो लोग भूलते जा रहे हैं। समवयस्क बहनों के प्रति भगिनीत्व बुद्धि का अभाव सा है। विकार भावना विद्या साधना में बाधक है।

विद्या वरदान है, पर आचार शून्य होने से वह अभिशाप भी बन जाती है। वृक्ष ज्यों-ज्यों फलता है, वह नम्र बनता जाता है। वैसे विद्यार्थी को भी विद्या की वृद्धि से नम्र बनना चाहिए था, पर आज विद्या से अहंभाव बढ़ रहा है। याद रखिए, अनुशासन और विनय के अभाव में प्राप्त विद्या अजीर्ण रोग के समान है।

## प्रश्न

१—विद्यार्थी जीवन का क्या उद्देश्य है?

२—विद्यार्थी को अपने अध्ययन काल में किन बातों का ध्यान रखना चाहिए?

३—विद्यार्थी देश की अमूल्य निधि क्यों है?

४—निम्न शब्दों के अर्थ बनाओ—

सोपान उर्वरा, वपन, शतशाखी, अभिशाप

पाठ १४

# अनुभूति के कण

## क्षमा

क्षमा का अर्थ है—सहना। सहना पड़े वह सामर्थ्य हीनता है। सहने को धर्म मानकर विरोधी भाव को सहना क्षमा है। क्षमा शक्तिशाली का अस्त्र है।

अपनी शक्ति के उन्माद पर नियन्त्रण रखना क्षमा है।

परिस्थितियों की प्रतिकूलता में उत्तेजित नहीं होना क्षमा है।

दूसरों को क्षमा देना नहीं जानता वह 'तुच्छ' है।

दूसरों से क्षमा लेना नहीं जानता वह उद्दण्ड है।

शान्ति उसे मिलती है जिसके हृदय में क्षमा लहराए।

दूसरों की कमजोरियों, अपराधों और भूलों को भुला सके—वही आनन्द का स्रोत बन सकता है।

अपने अपराधों के लिए क्षमा मागने में जो न झिझकाए वह महान् है।

शान्ति दूत वही है जो अपनी भूलों से उत्पन्न वेदना का नम्र अनुरोध करे।

### प्रश्न

१—क्षमा का क्या अर्थ है।

२—महान कौन है?

३—शान्ति किसे मिलती है?

४—निम्न शब्दों के अर्थ बताओ—

अनुभूति नियन्त्रण, उद्दण्ड, स्रोत।

# पाठ १५

## दान

दान शब्द का अर्थ होता है—देना, अर्थात् वितरण करना। आचार्यश्री तुलसी ने जैन सिद्धान्त दीपिका में दान शब्द की व्याख्या इस प्रकार की है—

"स्वपरोपकारार्थं वितरणं दानम्" यानि 'स्व' या 'पर' के उपकार हेतु जो वितरण किया जाता है, उस वितरण का नाम ही दान है। वितरण दो प्रकार का होता है—लौकिक व लोकोत्तर। ऐहिक यानि इस जन्म की अपनी और पराई भौतिक सुख सुविधा के लिए जो वितरण किया जाता है, वह लौकिक दान है। पारलौकिक यानि आत्म कल्याणार्थ जो वितरण किया जाता है लोकोत्तर दान कहलाता है। मुख्यतया दान के दो भेद होते हैं। इसके अवान्तर भेद दस भी होते हैं। ठाणांग सूत्र के दसवें ठाणे में बतलाया गया है—

दस विहे दाणे पण्णत्ते तंजहा
अणुकम्पा संगहे चेव, भया कालुणि एतिय
लज्जाये गारवेणं, अधम्मय पुणसत्तमे
धम्मे अट्ठमे वुत्त, काहिइय कयंति य ॥

(१) अनुकम्पा दान—दीन, हीन, असहाय, प्राणियों को कष्ट-जन्य दयनीय स्थिति में देना। जैसे किसी

व्याधि आदि से दुखित व्यक्ति की करुण भाव से सहायता करना अनुकम्पा दान है।

(२) संग्रह दान—धन आदि की सहायता से प्राणियों को बन्धन मुक्त करवाना। जैसे—जेल से बन्दी जनों को छुड़वाना, व कसाई, हिंसक आदि को रुपये देकर प्राणियों को छुड़वाना। ये सब दान संग्रह दान की कोटि में हैं।

(३) भयदान—भय के द्वारा जो कुछ दिया जाता है, उसे भय-दान कहते है। जैसे एक आतंकित व्यक्ति किसी से कुछ लेना चाहता है। देनेवाले व्यक्ति की हार्दिक इच्छा न होते हुए भी उसके द्वारा होनेवाले अनिष्ट की आशंका से जो दिया जाता है, तथा स्वयं के व परिवारिक जनों के किसी विघ्न—मृत्यु भय, या अनिष्ट ग्रह आदि को टालने के निमित्त जो दिया जाता है वह भयदान के अन्तर्गत है।

(४) कारुण्य दान—मृत के पीछे तत् सम्बन्धी कुल मर्यादा के अनुसार अथवा मृतक को अगले जन्म में सुख शान्ति मिले इस भावना से जो कुछ दिया जाता है, वह कारुण्य दान है।

(५) लज्जादान—संकोचवश देना लज्जादान है, जैसे समाज के प्रतिष्ठित व्यक्ति किसी याचना को लेकर द्रव्य प्राप्ति के आशय से किसी के पास जाते हैं। हार्दिक इच्छा न होते हुये भी यह सोच कर कि न देने से अच्छा नहीं लगेगा कुछ दे देते है, उसे लज्जादान कहते हैं।

(६) गौरव दान—यश के निमित्त दिया जानेवाला दान गौरव दान है। जैसे विवाह आदि व जन्म, मृत्यु के अवसर पर व अन्य त्योहारों के उपलक्ष में नामवरी के उद्देश्य से जो कुछ दिया जाता है, या सार्वजनिक कार्यों में जैसे कूवें, बावड़ी, जलाशय, प्याऊ, धर्मशाला आदि के निमाणार्थ नाम की लालसा से जो कुछ दिया जाता है उसे गौरव दान कहते हैं।

(७ अधर्म दान—हिंसक चोर, व्यभिचारी, वैश्यादि को बुरे कार्यों के लिए जो दिया जाता है, वह अधर्म दान है।

(८) धर्मदान—धर्मदान तीन भागों में विभाजित है। ज्ञानदान, पात्रदान, व अभयदान। जैसे किसी को आध्यात्मिक ज्ञान के द्वारा पदार्थों की सही जानकारी कराना ज्ञान दान है। पंच महाव्रत धारी साधु को संयम पोषण के निमित्त कल्पनीय आहारादि देना पात्र-दान कहलाता है। प्राणी वध के परित्याग द्वारा प्राणियों को अपनी ओर से भयमुक्त करना अभयदान कहलाता है।

(९) करिष्यति दान—जो प्रत्युपकार की भावना से दिया जाता है, उसे करिष्यति दान कहते हैं। जैसे एक व्यक्ति दूसरे को इस उद्देश्य से देता है कि भविष्य में वह भी मुझे कुछ देगा। अर्थात् उधार के रूप में जो दिया जाता है, वह करिष्यति दान कहलाता है।

(१०) कृत्यदान—अपने उपकारी की वापिस सहायता

या उधार के रूप में ली हुई वस्तु को वापिस देना कृत्य दान कहलाता है।

उपरोक्त दस दानों की गहराई से अवलोकन करने पर यह प्रतीत होता है कि धर्म दान को छोड़ कर शेष नौ ही दानों में राग द्वेष की प्रवृत्ति पाई जाती है। जहाँ राग द्वेष की प्रवृत्ति है, वहाँ पर अशुभ कर्मों का बन्ध है। अशुभ कर्मों का बन्ध निःसन्देह संसार परिभ्रमण का हेतु है। अतः संसार परिभ्रमण के जो भी कार्य हैं वे सब लौकिक कार्यों की अपेक्षा रखते हैं। इसलिए नौ ही दान लौकिक कार्य अर्थात् लौकिक दान हैं। सिर्फ धर्म दान को ही हम लोकोत्तर दान कह सकते हैं। विस्तृत जानकारी के लिए दया-दान पर आचार्यश्री भिक्षु का 'जैन शास्त्र सम्मत दृष्टिकोण' नामक पुस्तक का अध्ययन करें।

## प्रश्न

१—दान किसे कहते हैं?

२—दान के अवान्तर भेद कौन कौन हैं?

३—करिष्यति दान किसे कहते हैं?

४—लोकोत्तर दान किसे क

५—निम्न शब्दों के अर्थ

अवान्तर,

## पाठ १६

# अल्पारम्भी : बहुरम्भी

एक बार भगवान ऋषभदेव के समवसरण में भरत चक्रवर्ती और बहुत से लोगों ने भगवान के धर्मोपदेश को सुना। उपदेश समाप्त होने पर एक स्वर्णकार ने भगवान से प्रश्न किया कि हे भगवन, भरतजी अल्पारम्भी हैं या बहुरम्भी? भगवान ने उत्तर दिया—भरत अल्पारम्भी है। उसने सोचा जब भरतजी भी अल्पारम्भी हैं तो फिर बहुरम्भी तो और होगा ही कौन? उसने भगवान से फिर पूछा—भगवन्, मैं अल्पारम्भी हूँ या बहुरम्भी? भगवान ने फरमाया कि तुम बहुरम्भी हो।

स्वर्णकार ने विचार किया कि देखो स्वयं भगवान भी पक्षपात करते हैं। जहां भरतजी छः खण्ड के राजा हैं, इतनी लड़ाइयां लड़ी, इतना नर संहार किया, इतनी विशाल सेना रखते हैं, इतना आरम्भ समारम्भ करते हैं, उन्हें तो भगवान अल्पारम्भी बता रहे हैं और मुझे जिसको कठिन परिश्रम करके धनार्जन करना पड़ता है, न मेरे लम्बा-चौड़ा कारोबार है, न मैं कभी लड़ाइयां लड़ता हूँ और सेना आदि तो दूर मेरे तो कोई विशेष नौकर चाकर भी नहीं हैं जिसको भगवान बहुरम्भी बतलाते हैं। भगवान अवश्य ही पक्षपात करते हैं। उसका चेहरा फीका पड़ गया, चेहरे पर ईर्ष्या की झलक भी दिखाई पड़ रही थी। यद्यपि

के भाव छिपाने की पूरी कोशिश कर रहा था कि कहीं मेरे विचारों का दूसरों को पता न लग जाय जिससे लोगों में मेरी चर्चा-आलोचना न हो। पर भरतजी से ये भाव छिपे न रह सके वे उसके चेहरे से उसके मन के विचारों को समझ गये और उन्होंने स्वर्णकार को सही शिक्षा देने का विचार कर लिया। भगवान का उपदेश समाप्त होने पर सब लोग अपने अपने घरों को लौटे।

दूसरे दिन सुबह ही भरत ने नगर में स्थान स्थान पर उत्सव, संगीत, नृत्य आदि अनेकों नाच रंग करने का हुक्म दे दिया और उस स्वर्णकार को बुला लिया। बेचारा स्वर्णकार भी डरता-डरता भरत चक्रवर्ती के सामने हाजिर हुआ। भरत जी ने एक तेल से भरा कटोरा ( प्याला ) मंगाया और उसे स्वर्णकार के हाथों में रख कर हुक्म दिया कि इस कटोरे को हाथ में लिये हुए सारे नगर का चक्कर लगा कर आओ और ध्यान रखना कि कहीं तेल की एक बूँद भी गिर गई तो उसी समय मेरे राज कर्मचारी, जो तुम्हारे साथ नंगी तलवारें लिये हुए रहेंगे, तुम्हारा गला उड़ा देंगे। स्वर्णकार अपने मन में बहुत घबराया। सिर पर मौत पुकार रही थी! लेकिन चक्रवर्ती सम्राट भरतजी की जो आज्ञा थी बेचारे को प्याला लेकर नगर का चक्कर लगाने निकलना पड़ा। प्याला तेल से इतना ठसाठस भरा था कि अब उसमें एक बूंद तेल भी और नहीं समा सकता था।

स्वणकार प्याला लिये नगर का चक्कर लगा रहा था। रास्ते में तरह तरह के नृत्य, नाच - रंग, संगीत, गाने बजाने हो रहे थे। लेकिन स्वणकार को तो तेल के एक-एक बिन्दु में मृत्यु दिखाई पड रही थी। दिन भर सारे नगर का चक्कर लगाकर दिन समाप्त होते होते भरतजी के महलों को लौट कर आया। प्याला उसी प्रकार लाकर भरतजी के सामने रखा। भरतजी ने देखा कि उसके हाथों में तेल की चिकनाई मात्र भी नहीं लग पाई थी। अब भरतजी ने उससे प्रश्न पूछने शुरू किये।

"क्यों भाई। तुम नगर के किन किन भागों में घूम घूम कर आये ?"

"महाराज। आपके आदेशानुसार मैं सारे शहर का चक्कर काट कर आ रहा हूँ।"

"तुमने नगर के अमुक अमुक भागों में क्या देखा ?"

"महाराज। मुझे तो कुछ भी ध्यान नहीं है।"

"क्या उन उन भागों में संगीत नृत्य हो रहे थे, बाद्य बज रहे थे ?

"महाराज। क्षमा करें, मुझे तो सब स्थानों में मृत्यु और तेल के सिवाय कुछ भी दिखाई नहीं पड रहा था।"

"अब भी तुम्हें कुछ समझ में आया ?"

"क्या महाराज ?

भरतजी ने उसे समझाया—देखो, जिस नगर सुन्दर सुन्दर नाटक, नृत्य, संगीत, गान होते

ही दिखाई दे रही थी, तुम्हारा ध्यान उन नाटकों मे नहीं गया, उसी प्रकार मैं छह खण्डों का राज्य करते हुए भी राज्य मे लिप्त नहीं हूँ। हर समय यह ध्यान रहता है कि कहीं मेरे से अन्याय न हो जाय। मैं धर्म से दूर न हट जाऊँ। हर समय मुझे धर्म का ध्यान रहता है। इसीलिये भगवान ने मुझको अल्पारंभी बतलाया है। तुम्हारे पास अधिक धन नहीं है और न तुम्हारे अधिक कारोबार ही है फिर भी तुम्हारे दिन रात एक ही ध्यान रहता है कि किस प्रकार अधिक से अधिक धन इकट्ठा करूँ। दिन रात धन ही धन दिखाई देता है। इसीलिये भगवान ने तुमको बहुरंभी बतलाया है। अब स्वर्णकार के तत्व समझ मे आया। भरतजी ने स्वर्णकार को द्रव्य देकर संतुष्ट कर घर भेजा।

विपुल सम्पत्ति पास में होने पर भी जो निर्लिप्त भाव से भोग करता है वह फिर भी अल्पारंभी है और जो संसारी सुखों की कामना मे तल्लीन होते है वे दीन दरिद्र होते हुए भी बहुरंभी होते है। यह है भगवान के उपदेशों का सार।

## प्रश्न

१—भरतजी अल्पारम्भी थे या बहुरम्भी ?
२—अल्पारंभी व बहुरम्भी किसे कहते हैं ?
३—स्वर्णकार को भरतजी ने क्या शिक्षा दी ?
४—निम्न शब्दों के अर्थ बताओ—
तत्त्व, विपुल, नर-संहार, आरम्भ समारम्भ।

# शुद्धाशुद्धि

| पृष्ठ स० | पंक्ति न० | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| २ | १६ | नौ | नौवें |
| ५ | २२ | कालास्तिकाय | काल का |
| १४ | १० | एक करण और योग | एक करण और एक योग |
| ३१ | ६ | मिन्न दृष्टि | मिश्र दृष्टि |
| ३३ | ४ | थए | मए |
| ३५ | १० | प्रति पूण | प्रतिक्रमण पूण |
| ३७ | ५ | तत्व | तत्वज्ञ |
| ४१ | १५ | प्रति | प्रतिक्रमण |
| ५६ | २ | सगी | सज्ञी |
| ८६ | ५ | लज्जा | निलज्ज |
| ६१ | ६ | प्रज्ञप्ति | प्रतिज्ञा |
| ६१ | ११ | क्षुभित | क्षुभित |
| ६१ | १८ | पुष्पकार | पुष्पाकार |
| १०० | ११ | भागोतिरिक्त | योगोतिरिक्त |
| १०२ | १५ | त्रिविध | त्रिविध |
| १०५ | १४ | परिपालक | परिपालन |
| १०८ | ७ | शतशाखी | शतशाखा |
| ११० | १५ | वेदना का | वेदना को मुला देनेका |
| १११ | १४ | दाणो | दाणे |

श्री तेरापंथ विचार मंडल
बीकानेर
जैन दर्शन में
तत्त्व-मीमांसा